UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180402

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. [illegible] Accession No. GH. 1538

Author मिश्र, श्यामनारायण।

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक
की
ओर से :—

हिन्दी साहित्य में महाभारत के अनेक पात्रों को लेकर काव्यों की रचना की गयी है। बाबू मैथिलीशरण गुप्त के जयद्रथ वध नामक खण्ड काव्य के प्रकाशन ने इस दिशा में पथ प्रदर्शन का कार्य किया। इसके बाद अनेक कवियों ने महाभारत के प्रमुख पात्रों के जीवन पर काव्य रचना करके अपनी लेखनी को सफल किया है। प्रस्तुत पुस्तक (शल्य-वध) भी इसी तरह का एक प्रयास है। कौरवों ने जब पांडवों की एक भी बात नहीं मानी और "शूचिअग्रं न दास्यामि बिना युद्धेन केशव" की स्पष्ट घोषणा कर दी तो विवश होकर पांडवों को युद्ध क्षेत्र में उतरना पड़ा। कौरव पक्ष के अनेक पराक्रमी योद्धाओं ने जब वीरगति प्राप्त की तो अंत में दुर्योधन ने शल्य को कौरव सेना का अध्यक्ष मनोनीत किया। कौरव राज के इस चुनाव का उपहास करते हुये किसी संस्कृत-कवि ने लिखा था। "आशा बलवती राजन् शल्यो जयति पांडवान्" अर्थात् आशा बड़ी बलवान होती है, जिन पांडवों को बड़े बड़े कौरवों के प्रभावशाली योद्धा परास्त न कर सके उन्हें शल्य जीतेंगे?

प्रस्तुत पुस्तक में वीर शल्य की वीरता का बड़ा हृदयग्राही वर्णन ओजस्विनी भाषा में किया गया है। कवि की वाणी में माधुर्य है, रस है और चरित्र चित्रण की अपूर्व प्रतिभा है! कवि के इस प्रयास का यदि साहित्य और काव्य प्रेमियों ने स्वागत किया तो हम इस पुस्तक के रचयिता की लिखी गयी "भीम-वध" नामक काव्य पुस्तक पाठकों को शीघ्र ही भेंट करेंगे।

श्रीदूधनाथ प्रेस
सलकिया (हवड़ा)

विनीत
रामाधार सिंह
मैनेजर

शल्य-परिचय

जो नाटकादिक काव्य में, पाता प्रधान स्थान है।
उस पात्र परिचय प्राप्ति में, विद्वान रखता ध्यान है॥
इस हेतु नायक शल्य का, वृत्तान्त देने योग्य है।
सम्बन्ध हो जिस बात से, वह जान लेने योग्य है॥

(२)

वह मद्रदेशाधीश राजा, शल्य शौर्य प्रशस्त था।
नृप नीति शासन पालने में, सर्वथा विश्वस्त था॥
रण वीरता थी, धीरता, गंभीरता के साथ में।
सर्वत्र थी क्षमता समान, सनाथ और अनाथ में॥

(३)

माद्री बहन थी एक, जिसका पांडु ने था कर धरा।
सहदेव नकुलों का समुद्भव, था हुआ उत्सव भरा॥
हैं भानजे माद्रेय मामा, शल्य पांडव के हुए।
संसार में विख्यात है, हैं ये नहीं कुछ भी नए॥

(४)

जब आगये निःसीम दुख को, झेलकर बनवास से।
पांडव सभी निज राज्य पाने, के पुनः विश्वास से॥
तब शल्य निजपुर से चला, कुछ साथ में बलवान के।
पर राह में कपटी सुयोधन ने कहा, सब जान के॥

(५)

सम्बन्धियों में आपके, आगे प्रथम प्रस्तुत हुआ।
करता निमन्त्रित हूं अतः रण कार्य जो उद्धृत हुआ॥
हैं द्रोण कर्ण सुवीर नृप, भगदत्त मेरे पक्ष में।
होगा खड़ा को वीर बोलो? शल्य, भीष्म विपक्ष में॥

(६)

यह सुन कहा नृप शल्य ने, संग्राम है अच्छा नहीं।
निज बन्धु के विद्रोह में, होती कुशल बोलो कहीं॥
तुमने सहठ अधिकार पांडवका, लिया निज हस्तमें।
क्यों? अग्रसर तुम हो रहे हो, भूप कुल विध्वस्त में॥

(७)

कुरुवर! विचारो तो तनिक, निज बन्धु से रण ठान के।
घातक बनोगे शास्त्रगर्हित, गुरुजनों के प्राण के॥
परिणाम सर्वस्वान्त होगा, अन्त होगा वीर का।
तुम क्यों? न देते भाग, है जो धर्मधारी धीर का॥

(८)

मानो सुयोधन ! बात मेरी, यह कलह तुम छोड़ दो।
निज बन्धु से मिल कर गले, अपकर्म से मुंह मोड़ लो ॥
तुम पाँच ग्राम प्रदान कर, सन्तोष दो उनको अभी।
पग रख हुआ दुष्कर्म पथ पर, नर सुखी बोलो कभी ॥

(९)

तुम बन्धु दोनों का सुमंगल, चाहता हूं सर्बदा।
सम्पन्न सम्बन्धी किसे, भाता न है बोलो सदा ॥
फल पुष्प से शोभित सुबन, मत नष्ट कर डालो अभी।
पग पर कुल्हारी आपसे, है विज्ञ अज़माता कभी ॥

(१०)

तुम से निमन्त्रित हूं अतः तो धर्म है मेरा यही।
स्वीकार करलूं सर्वथा, वह प्राण घातक हो सही ॥
पर मान लेते बात तो, नर-नाश हो पाता नहीं।
संसार वैभव शूर, रण में चूर हो जाता नहीं ॥

(११)

अच्छा तनिक राजा युधिष्ठिर से, मिलूंगा मैं अभी ॥
आये अहो ! दुःसह बनों के कष्ट अति सहकर सभी।
मैं धैर्य क्या ! दूंगा उन्हें वे धैर्य के अवतार हैं।
वे दर्शनों के योग्य, जिनके सत्य-पथ आधार हैं ॥

(१२)

जब द्वार रक्षक से समादृत शल्य, सिंह द्वार से ।
आया सभा में वह, युधिष्ठिर के मिलन उद्गार से ।।
सामोद तब, भीमादि,सञ्जय,शोमकादिक भी सभी ।
उनसे गले मिलने लगे, वे बार बार विराट भी ।।

(१३)

कुशलादि होने पर, युधिष्ठिर शल्य से कहने लगे ।
करने लगे जब याद बन दुख, अश्रु तब बहने लगे ।।
राजन् ! मुझे कुरुराजने, सुख से नहीं रहने दिया ।
निश्चिन्त से बन में न भी, आराम हा ! करने दिया

(१४)

उपभोग द्वादश वर्ष बन का, कर रहे अज्ञात में ।
फल मूल का आहार कर, हैं दुख सहे बरसात में ।।
कुरुराज के कारण अभीतक, चैन है आता नहीं ।
दुर्वृत्त की दुर्वृत्तता से, शान्ति नर पाता कहीं ।।

(१५)

माधव ! हमारे हित गये, कुरुद्वार समझाने उसे ।
कब मानता है नीति वह,हो नीचता का बल जिसे ।।
अज्ञानने कुछ मान, इनकी बात का रक्खा नहीं ।
है अज्ञने निज अज्ञता से, सभ्यता सीखी कहीं ।।

(१६)

अब भी न देता, पांच गावों का मुझे अधिकार है।
सुइ के बराबर भूमि देने में, वही लाचार है॥
कहता यही है, युद्ध होगा विश्वव्यापी आप से।
कुल नाश होता है, किसी की नीचता के ताप से॥

(१७)

कहने लगे मद्राधिपति से, आप हरि इस बीच में।
समयोपयोगी बोध कुछ, रहता नही है नीच में॥
सब बात में ही घेर लेती, स्वार्थ तत्परता उसे।
वह सोच सकता कुछ नहीं, सर्वत्र है शठता जिसे॥

(१८)

यह दूर तक वान्धव कलह की, आग फैलेगी अभी।
संसार के धन धान्य नर की, नाश कर देगा सभी॥
सद्भाव से भी मांगने पर, राज वह देता न है।
तो वीर अपने शत्रुओं से, भीख भी लेता न है॥

(१९)

हैं साधु पांडव आप जैसे वीर मामा हैं जिन्हें।
द्रौपद, धनुर्धर सात्यकी आदिक, सहायक हैं जिन्हे॥
तलवार की ही धार से, अधिकार निज लेंगे अभी।
कंटक पड़े जो मार्ग में, वह दूर कर देंगे सभी॥

(२०)

कहने लगा तब शल्य, धर्माधीश से नत शीश हो।
राजन् ! विचारो सर्वथा, तुम वीर कर्माधीश हो ॥
पहले निमन्त्रित है किया, कुरुराजने रण के लिये।
है योग्य क्या ? कर्त्तव्य, रण-धर्मज्ञ अब मेरे लिये ॥

(२१)

साहाय्य करना आपका, है धर्म मेरा सर्वथा।
पर क्या करूँ, लाचार उसने है किया कह मृदु कथा॥
होकर प्रतिज्ञा बद्ध, निज कर्त्तव्य दृग आता नहीं।
है धर्म क्षत्रियका, परम प्रिय प्राण से बढ़कर कहीं ॥

(२२)

है धर्म, वीरों का कठिन, फिर भी निभाना चाहिये।
कर्त्तव्य होता है यही, प्रण पूर्ण करना चाहिये ॥
इस युद्ध में होगी विजय, हे सत्य वादिन ? आपकी।
जलकर मरेगा आग में, अपने किये वह पाप की ॥

(२३)

गोविन्द ! तुमने पांडवों की, लाज रखली है सदा।
केवल तुम्हारा बल इन्हें है, नाथ ! जानो सर्वदा ॥
उस नारकी की नर सभा में, द्रौपदी की टेर को।
सुनकर किया था दूर, तुमने पातकी अन्धेर को ॥

(२४)

सम्बद्ध हूं मैं धर्म बन्धन से, अतः बाधित हुआ।
मदमत्त ऐरावत अहो !, ज्यों शस्त्र से साधित हुआ॥
इस भूल को करना क्षमा है, हे क्षमा सागर ! तुम्हें।
हित हेतु प्रस्तुत हैं अभी, त्रिभुवन जयी अच्युत तुम्हें॥

(२५)

जाने लगा मद्राधिपति, यह कह युधिष्ठर आदि से।
अन्तिम मिलन मेरा यही है, भीम आदि अनादि से॥
जिस ओर के हैं द्वारपालक, साथ धर्म महान् दो।
है जीत निश्चित सर्वथा, हे धर्मराजन्! जानलो॥

(२६)

आकर निकट कहने लगे, धर्मेश तब मद्रेश से।
तुमने कहा जो जानता हूं, धर्म के उद्देश से॥
पर यह कथन के योग्य, तुम से एक मेरी बात है।
नद धार में आधार, तिनके का सहारा ख्यात है॥

(२७)

है कर्ण अर्जुन में सदा से, शत्रुता जानी हुई।
दो में रहेगा एक ही, यह बात है मानी हुई॥
तुम से कथन है, वीर दोनों के महा संग्राम में।
करना अनुत्साहित सदा, रवि-पुत्र को रण काम में॥

(२८)

यह कार्य तेरे योग्य है, तुम हम सबों के तात हो।
निज भानजे के हित, तुम्हें, स्वीकृत हमारी बात हो॥
तुम धर्म बन्धन बद्ध हो, जाकर लड़ो उस ओर से।
रक्षक त्रिलोकीनाथ हैं, सर्वत्र संकट क्रोड़ से॥

(२९)

निज प्रियजनों की प्रीति रखते हैं, सभी सब कार्य में।
समुदारता कमती न होती, विज्ञता युत आर्य में॥
उसने सबों से मिल लिया, सामोद समुचित रीतिसे।
उत्तर यथोचित दे, किया प्रस्थान रण रत नीति से॥

(३०)

वाचक! हमारे पूर्वजों में, थी यही सद्भावना।
कर्त्तव्य पर करते सदा, संसार से भी सामना॥
निज धर्म हेतुक, बन्धुओं से बन्धु भी रण ठान के।
तत्पर सभी थे, सर्वदा, बलिदान में निज प्राण के॥

(३१)

वे आज कल-से, पाप-पथ में रत रहा करते न थे।
अपहृत गरीबों के धनों से, कोष निज भरते न थे॥
वे वीर सत्योपासना की, वासना में लीन थे।
नारी-विलासी-प्रिय न थे, वे आर्य्य कार्य्य प्रवीण थे॥

(३२)

भगवान् ! भारतवर्ष को, फिर सत्यता युत ज्ञान दो ।
बलवान दो सन्तान उसमें, मान्यता युत मान दो ॥
जातीय गौरव पर सदा, वे प्राण भी अर्पण करें ।
निज गुरुजनोंके मार्ग पर, पग सर्वथा स-प्रण धरें ॥

* इति *

शल्य-वध

प्रारम्भः ।

प्रथम खण्ड

वाचक ? प्रथम सर्वत्र ही, नगनन्दिनी-नन्दन कहो ।
रक्षार्थ जननी-भूमि के, संकट सभी स-प्रण सहो ॥
निज गुरुजनों के मार्ग पर तुम सर्वदा युग पग धरो ।
परतन्त्रता मिटकर रहेगी; सत्य-अवलम्बन करो ॥

(२)

निज पूर्वजों की यह कथा, सुनने सुनाने योग्य है ।
भारत-समर-सद्गुण-सुधा पीने पिलाने योग्य है ॥
है यह कथा प्राचीन, उत्तम दृश्य है उसमें धरा ।
वह ध्यान देने योग्य है, आदर्श हो जिसमें भरा ॥

(३)

जब कर्ण कृत भीषण समर से, भीतिमय जगती हुई ।
गतिरुद्ध अर्जुन की, मुखाकृति, आग-सी लगती हुई ॥
उसकाल सञ्चालन शरों के, देखने के योग्य थे ।
कोई न कह पाते युगल में, कौन योग्य अयोग्य थे ॥

(४)

उल्का-पतन की भांति, सायक व्योम से गिरने लगे।
रव घोर कर घनकी घटा, रण-भूमि में गिरने लगे ॥
विकराल वाणोंसे समर, खाली न था तिलभर कहीं।
थे विज्ञ दोनों इसलिये; हठ छोड़ पाते थे नहीं।

(५)

गुरु पुत्र,, कृप,, कृत,, शल्य,, शकुनी,, वीर,, दुर्योधन सभी
शोमक सहित भीमादि, सञ्जय, सात्यकी बलवान भी।
संग्राम तजि अनिमेष लोचन, से लगे अवलोकने ॥
इस युद्ध से भयभीतियां, पाई नहीं! किस लोकने ॥

(६)

व्रण-पूर्ण अर्जुन-अङ्ग, किंशुक- पुष्प सम सोहित हुए।
पुरुषार्थ लखि रवि पुत्र के भगवान भी मोहित हुए ॥
शर-जाल रचकर वीर अर्जुन को लगा यों हेरने ॥
स्वाधीनता संबद्ध गज पर, दृष्टि की हो शेर ने।

(७)

यह शौर्य्य साहस-पूर्ण उसका, देख अर्जुनने कहा।
माधव नहीं उसका पराक्रम, अब ज़रा जाता सहा ॥
पर आज उसके सामने क्यों? गति हमारी रुद्ध है।
मैं यत्न करता हूं सही, पर व्यर्थ होता युद्ध है ॥

(८)

हँसकर त्रिलोकी नाथ ने, उनसे कहा मत खिन्न हो।
बल वीरता में शौर्य्य में, दोनों रणज्ञ अभिन्न हो॥
हैं! क्या? हुआ देखो? इधर क्यों! कर्ण-रथ निश्चल हुआ।
आया मही पर शल्य रख, कितना अभी विह्वल हुआ॥

(९)

सोचो न अर्जुन? शीघ्रता कर, पूर्ण धन्वा तान लो।
विकराल व्याल समान करमें, काल-भक्षक बाण लो॥
यह शुभ समय संयोगसे, आया तुम्हारे हाथ में।
करुणा न करनी चाहिये, रह शत्रुओं के साथ में॥

(१०)

बस चूक जाने पर तुम्हें, अवसर मिलेगा फिर नहीं।
शुभ कार्य्य करने का समय, मिलता सदा बोलो? कहीं॥
इस भाँति कहने पर धनञ्जय, ने कहा कुछ दीन हो।
ऐसा नहीं आदेश दो, जो वीर-कर्म-विहीन हो॥

(११)

हम क्षत्रियों का धर्म होता, प्राण से प्यारा कहीं।
सारा मही का मोह कर, पाता विचल कुछ भी नहीं॥
असहाय अस्त्र विहीन पर, आघात करना व्यर्थ है।
बोलो-जनार्दन? वीर वाणी का यही क्या? अर्थ है॥

(१२)

हे धर्म-तत्पर पार्थ तुम, क्यों ? सोचते इस बात को।
क्यों ? याद हो करते नहीं, इस कर्ण कृत आघात को॥
अपकर्म-पथ गामी जनों को, दंड देना कर्म है।
अविचारियों के साथ में, करना विचार अधर्म है॥

(१३)

इस भांति प्रोत्साहन जनार्दन का मिला जब पार्थ को।
भगवान के आदेश में, भूले नहीं वे स्वार्थ को॥
टँकार कर गांडीव को, वे वाण बरसाने लगे।
निःशस्त्र कर्ण-शरीर को, कर विद्ध सुख पाने लगे॥

(१४)

बहु क्षुण्ण बहने से बलीश्वर, कर्ण जब कम्पित हुए।
वह वीर क्षत्रिय तब कहीं, निज प्राण से शंकित हुए॥
कहने लगा कर्त्तव्य यह, शोभा नहीं देता तुझे।
इस कर्म पर क्या ? जग कहेगा, धर्म का नेता तुझे॥

(१५)

रे पार्थ ? तू है वीर पर, यह निन्द्य तेरा कार्य्य है।
निःशस्त्र पर आघात करता, ही नहीं जो आर्य्य है॥
तू वीर कुल में कालिमा का, बीज क्यों बोने लगा।
कर मोह प्राणों का अरे ! क्यों ? धर्मको खोने लगा॥

(१६)

मानव मरण धर्मा अमरता, प्राप्त कर सकता नहीं।
जिस राष्ट्रका इच्छुक अभी है, वह सदा रहता नहीं ॥
सुस्थिर हिमालय की तरह, रहता सुयश संसार में।
जो नीति पालन कर गये, वे हैं अमर जग धार में ॥

(१७)

तू धर्म का आलाप करता, पर बगल में पाप है।
मुंह में अमृत है पर हृदय में, विष भरा सन्ताप है ॥
है जो छली रथवान कपटी, आज तेरे पास में।
तू नर्क भोगेगा अरे, उसके कथन विश्वास में ॥

(१८)

ठुकरा दिया जिस भाँति, तूने वीर के मन्तव्य को।
हैं सूर्य्य साक्षी और पृथ्वी, देखती कर्त्तव्य को ॥
पर शल्य रहते जीत पाता, तू नहीं मुझको कभी।
रे देख ? तेरी कीर्ति पर, जो हँस रहे तुझको सभी ॥

(१९)

यह कह गिरा वह वीर होकर, छिन्न वसुधा गोद में।
श्री कृष्ण अर्जुन ने तुमुल,ध्वनि की बड़े आमोद में ॥
भीमादि सञ्जय सात्यकी, आनन्द में परिणत हुए।
द्रौपद सखा के साथ, धर्मज प्रीति में संरत हुए ॥

(२०)

निःशंक होकर पार्थ ने की, शत्रु पर शर वृष्टियां।
होने लगी कुछ देर में, आश्चर्य्य कर रण सृष्टियां॥
नर रुन्ड मुन्ड प्रचंड, शर से खंड हो गिरने लगे।
रण कुन्ड शव के झुन्ड से, बहु शीघ्रतर भरने लगे॥

(२१)

रण वीर अर्जुन बाण से, संभव नहीं था त्राण का।
उस क्षण सबोंने तज दिया, संमोह अपने प्राण का॥
तत्पर पलायन में हुए, रिपु सैन्य दुःसह घात से।
रखते न कोई धीरता, बहु वेग वाही बात से॥

(२२)

बहुअश्व गज के भागने से, शब्द अति होने लगा।
रथवान् रथ को छोड़ कर, निज धीरता खोने लगा॥
पथ भ्रान्त रिपु पादातियों का, प्राण संकट मय हुआ।
अहि तुल्य अर्जुन बाण से, संसार मानों! लय हुआ॥

(२३)

कुरुवाहिनी के साथ क्लेशित, देख कौरव नाथ को।
कहने लगे कृप वीर उसके, पकड़ कर युग हाथ को॥
राजन्! तनिक मेरे कथन पर, ध्यान देना चाहिए।
हितकर वचन निज शत्रु का भी मान लेना चाहिए॥

(२४)

जो थे पितामह भीष्म गुरुवर, द्रोण कर्ण महारथी।
बान्धव तुम्हारे पुत्र लक्ष्मण, वीर वह जयद्रथ रथी॥
सुरपुर गये रण कर सभी, हैं वीर अब को को बचे।
आशा करें किसकी कहो? है कौन जो रण को रचे॥

(२५)

हमने रथीवर धीरता युत, वीर क्षत्रिय आर्य्य को।
है खोदिया बहु मूल्य मोती, के सदृश आचार्य्य को॥
कुछ वीर वर्गों के सहित, हम रह गये इस काम में।
आशा न क्यों! तुम छोड़ते, इस पार्थ कृत संग्राम में॥

(२६)

रथवान् पाकर कृष्ण को, वह वीर आज अजेय है।
हम लोग से क्या! देवगण से, भी न अर्जुन जेय है॥
इसकी ध्वजा को देखती, मेरी विशद सेना जभी।
खो बैठती है धीरता, रण वीरता अपनी सभी॥

(२७)

है भस्म उसने की हमारी, किस तरह सेना अभी।
ज्यों हो भयंकर आग से, जल राख बन घासें सभी॥
गांडीव की टंकार से, भय भीत सबको है किया।
ज्यों सिंह अपने घोर रव से, हो मृगों को भय दिया॥

(२८)

किस भांति अर्जुन ने, कपा डाला हमारी नाव को।
जैसे हवा दुस्तर नदी में, डगमगाती नाव को॥
श्री हीन है सेना सभी, नायक बिना कैसे कहो॥
भाती न रजनीकर बिना, रजनी यथा राजन् अहो॥

(२९)

है अस्त्र विद्या में कुशल, अर्जुन सबों से सर्वथा।
वह वीर है रण धीर है, दुर्द्धर धनुर्धर है तथा॥
गांडीव का टंकार रव, किसको डिगाता है नहीं।
राजन्! कहो शर पार्थ का, किसको गिराता है नहीं॥

(३०)

प्रारम्भ होना युद्ध को, सत्रह दिवस हैं हो गये।
कितने हमारे वीरगण, रण गोद में जा सो गये॥
जिसके लिए रोते अभी हो, सोच देखो! ध्यान से।
वह कर्ण भी तो है मरा, हा! हा! धनञ्जय वाण से॥

(३१)

किसका भरोसा मैं करूँ, ऐसी परिस्थिति में अहो।
वह कौन है जो पार्थ से, पा ले विजय रण में कहो?
नाना तरह के आज उसके, पार्श्व में दिव्यास्त्र है।
वह है महान् बड़ा चढ़ा, उसका भयंकर शस्त्र है॥

(३२)

वह पर्वतों को चूर सकता, वज्र देही भीम है।
सकता सुखा सब सिन्धुओं को, बल उसे निःसीम है॥
है सात्यकी का शौर्य्य, उससे कम नहीं रण काम में।
हैं सिंह सम दोनों बली, लड़ते हुए संग्राम में॥

(३३)

जो कुछ किया प्रण भीमने, उसदिन सभामें रोष से।
कर्तव्य कर दिखला दिया, उत्तर दिया है ठोस से॥
प्रण को करेगा पूर्ण वह, जो कुछ हुआ पूरा न हो।
रण के प्रलय कारी बली की, शौर्य्य की सीमा न है॥

(३४)

सज्जन सभी हैं पाण्डुनन्दन, दोष उनके हैं नहीं।
तुमने अकारण कष्ट उनको, है दिया बढ़कर कहीं॥
उस घोर अत्याचार का, परिणाम है राजन ? यही।
कुरुनाथ ! जानो सत्य है, दुष्कर्म-पथ का फल यही॥

(३५)

यों आपने, निजको बचाने के लिए जो जो किये।
इस विश्वके सब वीर को, जो अभिनिमन्त्रित हैं किये
क्या ? फल हुआ उनसे, गये वे देव-सेवन के लिये।
सन्देह में जीवन पड़ा है, क्या ? हुआ उनके किये॥

(३६)

मँझधार में है डगमगाती, नाव नाथ ! विचार लो।
है कौन रक्षक ! आज, लोचन से समस्त निहार लो॥
ऐसी परिस्थिति में, बृहस्पति ने बतायी नीति है।
धन जन बलों से हीन हो तो, सन्धि करना रीति है॥

(३७)

निज शत्रु से संग्राम करना, चाहिए उसकाल में।
सम्पन्न हो सब शक्तियों से, सर्वथा जिसकाल में॥
धन बल हमारा पाण्डवों से, होगया कम आज है।
इस हेतु मेरी राय से, अब सन्धि करना न्याय है॥

(३८)

अपनी भलाई की नहीं है, बात जो नृप जानता।
बयवृद्ध गुरुओं का नहीं, हितकर बचन है मानता॥
कुरुराज ? वह निज राज्यसे, अति शीघ्र होता भ्रष्ट है।
उसका भला होता न है, वह भोगता संकष्ट है॥

(३९)

शिरको झुकाने से मुझे, हो राज्य तो क्या ? हानि है।
बोलो ! सुयोधन ! सन्धि करनेमें, मुझे क्या ? ग्लानि है॥
यों मुर्खता बस हार जाने में, नहीं कुछ है भला।
रण में न मेरा पाण्डवों से, जानलो होगा भला॥

(४०)

धृतराष्ट्र का कहना नहीं, श्रीकृष्ण टालेंगे कभी।
हरि के कथन राजा युधिष्ठिर; मान ही लेंगे सभी॥
फिर उन सबों की राय से, बाहर न अर्जुन भीम है।
इस भांति उनसे सन्धि करना ही, हमें अब ठीक है॥

(४१)

यों तो युधिष्ठिर आदि से, होना विजय संभव न है।
पांडव सभी कुछ हमसबों से, शक्ति बलमें कम न है॥
अति हानि होगी इस समय, यदि बात मानोगे नहीं।
राजन्! विचारो सर्वथा, परिणाम है सुखकर नहीं॥

(४२)

इस भांति कहने पर सुयोधन, सोचमें कुछ लीन हो।
देने लगा उत्तर उन्हें, कुछ व्यस्त और मलीन हो॥
हे विप्रवर! तुमने मुझे, जो कुछ कहा सो ठीक है।
जो चाहिए देना हितैषी को, वही दो सीख है॥

४३)

हा! किन्तु यह तेरा वचन, मुझको पुनः भाता नहीं।
ज्यों रुग्ण नर का भेषजों पर, ध्यान है जाता नहीं॥
सोचो तनिक राजा युधिष्ठिर थे महान् धनी कभी।
मैंने बनाया है भिखारी; जीत जूए में सभी॥

(४४)

इस राज्य से किस भेष में, बाहर निकाला है उन्हें।
मेरे वचन पर आज क्यों ? विश्वास हो सकता उन्हें॥
श्रीकृष्ण जब मेरे यहां थे, दूत बन आये हुए।
धोखा दिया मैंने उन्हें, कुछ रोष भी लाये हुए॥

(४५)

उस दिन सभा में द्रौपदी ने, जो करुण क्रन्दन किया।
यह देख कर किसके दृगोंने; अश्रु का मोचन किया॥
जिस भांति मैंने पांडवों का, राज्य छल से हर लिया।
है याद सब जो जो उन्हें, संकष्ट है बढ़कर दिया॥

(४६)

उसके लिए श्रीकृष्ण को; अबतक महान अमर्ष है।
प्रति शोध लेने के लिए, वह और पार्थ समर्थ है॥
दो देह को धारण किये, वे वीर दोनों एक हैं।
अवलम्ब दोनों दूसरे का, विप्र वीर! सदैव हैं॥

(४७)

जबसे उन्होंने भानजे अभिमन्यु का मरना सुना।
सुख नीन्द है सोया नहीं; तबसे बहुत है सिर धुना॥
हमलोग उनके आज, अपराधी अनेकों हैं यहां।
वे सन्धि कर लेंगे अभी, विश्वास होता है कहां॥

(४८)

बलवीर वर उस भीम का; कैसा स्वभाव कठोर है।
कैसी कड़ी उसने प्रतिज्ञा की, भयंकर घोर है॥
वह शूर सूखा काठ-सा ही, टूट जाय भले सही।
पर झुक नहीं सकता कभी; नर सिंह-रूप समान ही॥

(४९)

सहदेव नकुलोंका समरमें, शौर्य्य है कुछ कम नहीं।
गजराज-से बलवान् दोनों, साहसी बढ़कर कहीं॥
है धृष्टद्युम्न शिखण्डियों से, शत्रुता जो सर्वथा।
वे वीर मानेंगे नहीं, अब सन्धि विषयक यह कथा॥

(५०)

जिस काल कपड़े द्रौपदी, पहने हुए थी एक ही।
हे विप्र ! है कुछ याद, और रजस्वला थी फिर वही॥
हा ! गुरु जनों के सामने, जिस भांति वह लाई गई।
सोचो ! तनिक उस दिन वहां, उसकी दशा जो कीगई॥

(५१)

हा ! कष्ट ! अपवर्त्तव्य, मेरा, भूल सकतीं वह कभी।
बर्ताव उस दिन का हमारा, याद हैं उसको सभी॥
जब से उसे हे विप्रवर ! यों क्लेश मैंने है दिया।
तब से हमारे नाश का; संकल्प उसने कर लिया॥

(५२)

हा ! आज मिट्टी-वेदियों पर, द्रौपदी है सो रही।
उस शत्रुता का, शोध—लेने के लिए है रो रही॥
अब तक नहीं उसकी प्रतिज्ञा, विप्र ! है पूरी हुई।
काली तरह तब तक अहो, ! है बाल लट खूली हुई॥

(५३)

वह सप्तरथियों से समर में, किस तरह घेरा गया।
हा ! किस अनीति, अधर्म से, अभिमन्यु वह मारा मया॥
रोता हुआ उस दिन सबों से, जो कहा उसने अहो !
वह पांडवों को याद है, तब सन्धि हो कैसे कहो !!!

(५४)

उपभोग मैं जब करचुका हूं, इस मही का सर्वथा।
शिरमौर होकर सब नृपों का क्षत्रधारी हूं तथा॥
हे विप्र वीर ! समुद्र तक मैं एक शासक हूं अभी।
सेवक बनूंगा पांडवों का, यह न अब होगा कभी॥

(५५)

संसार में कोई सुखी, रहता न आया है सदा।
ये राष्ट्र हैं किसके लिए, हे विप्र ! बोलो, सर्वदा॥
हम क्षत्रियों को चाहिए, करना उपार्जन कीर्तिका॥
डटकर समर करना सदा, यह कर्म है रण-नीतिका॥

(५६)

घर में पड़े ही खाट पर, मरना बहुत-ही पाप है।
हे विप्र! यह कर्तव्य, क्षत्रिय के लिए सन्ताप है॥
जो यज्ञ कर कर हैं बढ़े बन या समर में मर गये।
वे कीर्ति अपनी जान लो, जग में अमर हैं कर गये॥

(५७)

जिसको बुढ़ापे ने, बहुत जर्जर किया लाचार हो।
हो रोग से व्याकुल, निकट बैठा हुआ परिवार हो॥
यदि दीनता युत बात, करता हो वही उस काल भी।
वह क्षत्रियों में वीर कहने योग्य रह पाता कभी?॥

(५८)

हैं श्रेष्ठ जिनके आचरण, रण-पृष्ठ दिखलाये नहीं।
जिनकी प्रतिज्ञा सत्य है, हैं वीर वे बढ़कर कहीं॥
यज्ञान्त जिनने शास्त्र धारा में, किया सुस्नान है।
हे विप्र! उनके ही लिये, सुर लोक में सुस्थान है॥

(५९)

निज इष्ट मित्रों बान्धवों के, संग कितने वीर हा!!
रण कर गये मेरे लिए, वे भीष्म गुरु रणधीर हा!!!
अब पांडवों से सन्धि कर, मैं राज्य लूं किसके लिए।
हे विप्र! बोलो! है यही, कर्त्तव्य वीरों के लिए॥

(६०)

मानो, मिलेगा राज्य यह, यदि पैर पड़ने से मुझे।
होकर विहीन समाज से, किस काम का होगा मुझे॥
इसहेतु अब अच्छी तरह, करना हमें संग्राम है।
मरकर समर में शौर्य्य से, जाना मुझे सुरधाम है॥

(६१)

इस हेतु मैं, बल वीरता, रण धीरता को साथ ले।
कर्त्तव्य क्षत्रिय वीर का, कर कीर्ति अपने हाथ ले॥
डट कर करुंगा युद्ध, अपने शत्रुओं के संग हो।
सुरलोक जाऊंगा, समर कर शोणितों से रंग हो॥

(६२)

इस भांति गर्वीले वचन, सुनकर सबोंने ही वहां।
उसकी प्रसंसा पूर्ण की, हो कर प्रसन्न यहां वहां॥
निज बन्धुओं का, और अपनी हार का दुख तज दिया।
संग्राम करने के लिए, निश्चय हृदय से कर लिया॥

(६३)

उनमें प्रधान प्रधान वीरोंने, सुयोधन से कहा।
राजन्! बिना सेनेश का, संग्राम है अनुचित महा॥
सेनाधि पति-संरक्षणों में, आज भी बढ़ते हुए।
उन पांडवों से युद्ध में, लेंगे विजय लड़ते हुए॥

(६४)

आचार्य्य के बदले, अभी भी पुत्र उनके विज्ञ हैं।
मर्मज्ञ हैं नीतिज्ञ हैं, रण में कुशल रण विज्ञ हैं॥
इस हेतु उनसे नीति में, सुविचार लेना चाहिए।
अब कौन नायक योग्य हैं, यह पूछ लेना चाहिए॥

(६५)

इस भांति सम्मति पा, सुयोधन ने कहा उन वीर से।
गुरु पुत्र हैं द्विज श्रेष्ठ हैं, शुक्र गुरु वर धीर से॥
हे विज्ञवर! रण-नीतियों में हम सबों में एक हो।
सेनेश के पद पर कहो! किनके अभी अभिषेक हों॥

(६६)

उसने कहा, अब हम सबों में शल्य शूर सुयोग्य हैं।
हैं सर्वगुण सम्पन्न, वे नायक बनाने योग्य हैं॥
इसहेतु सेनाध्यक्ष तुम, उनको बना रण में बढ़ो।
आगे उन्हें कर युद्ध में, तुम शत्रुओं पर जा चढ़ो॥

(६७)

सुनकर सभी नृप शल्य को, सब ओर से ही घेर के।
कहने लगे सम्मुख उसीके, दृष्टि अपनी फेर के॥
मद्रेश! तुम वीराग्रगण्य, कुलीन और सुजान हो।
बलवान् हो विद्वान् हो, रणधीर और महान् हो॥

(६८)

उससे सुयोधनने कहा, होकर विनम्र खड़े खड़े।
तुम से कहो ? हे मित्रवर ? हैं कौन ? वीर बढ़े चढ़े॥
इसहेतु सेनापति बनो, इस वीर सेना के अभी।
हो सर्वथा तुम योग्य उसके, हो समर-विद्वान् भी॥

(६९)

रक्षा सुरों की की यथा, सेनेश ने सुर लोक में।
पालन करो हे मित्र ?, मुझको सर्वथा इस लोक में॥
सब रक्षणों में सर्वथा, मेरी विजय श्री आज हो।
तुमसे अचल संग्राम जेता, मित्र ? यह कुरुराज हो॥

(७०)

उसने कहा सेनेश का, सम्मान देते हो मुझे।
हे वीरवर ? तेरे लिए, स्वीकार है सब कुछ मुझे॥
धन और मेरा राज्य, तव कल्याण करने के लिये।
जानो सुयोधन ? प्राण हैं, तेरी भलाई के लिये॥

(७१)

अभिमान कुछ करता नहीं, मैं सत्य हूं कहता तुझे।
रण में नहीं, हरि सहित पार्थ, परास्त कर सकता मुझे॥
जिसको समझते हो, सबों से श्रेष्ठ हैं बलवान् हैं।
भीमादि वे मेरे भुजों के, शौर्य्य के न समान हैं॥

(७२)

यदि सुर असुर गन्धर्व, किन्नर और मानव भी सभी।
सारा मही मंडल हमारे, हो विपक्ष खड़ा कभी॥
तो मैं अकेला ही सबों से, युद्धकर सकता वहीं।
बलहीन पाण्डव क्या? लड़ेंगे जानलो राजन्? वहीं॥

(७३)

तेरे दलों का आज, संचालक बनूंगा युद्ध में।
ऐसा रचूंगा व्यूह, तेरे वीर शत्रु विरुद्ध में॥
उसको विपक्षी वृन्द, जानो, छिन्न कर सकते नहीं।
जो काम करते हैं बड़े, वे व्यर्थ को बकते नहीं॥

(७४)

राजन्? सुनों मैं गर्व की, कुछ बात हूं कहता नहीं।
है वीरता जिस वीर में, वह शत्रु-दुख सहता नहीं॥
है कृष्ण की जितनी चतुरता, है मेरी जानी हुई।
चलती न निर्बल की, बली पर बात है मानी हुई॥

(७५)

गांगेय द्रोण, सुवीर कर्णादिक बली मारे गये।
बल से नहीं छल से समर में, आज संहारे गये॥
इस अस्त्र से, उस आततायी का नहीं निस्तार है।
पाता नहीं वह जीत, जिसका कपट पूर्ण बिचार है॥

(७६)

मेरी कुशलता देखना, रण में खड़ा होकर कहीं।
पांडित्य लखकर वीर का, निश्चय करोगे तुम वहीं॥
भीमादि शोमक सात्यकी सम्मुख न होंगे वाण के॥
मृग शत्रु के आगे न रखता, मोह जम्बुक प्राण के॥

(७७)

यह सुन बड़े आमोद में, कुरुराजने उससे कहा।
हे मित्र! है आशा यही, जो कुछ अभी तुमने कहा॥
पर कृष्ण की चालाकियों पर ध्यान देना सर्वथा।
वह वीर तो कुछ है नहीं, है धूर्तता केवल यथा॥

(७८)

यह कह सखों के साथ, कुरुवर प्रीति अति पाने लगा।
मृत कर्ण के सन्ताप को, वह भूल अब जाने लगा॥
बहु वाद्य उत्सव साथ, उसको क्षत्र से सोहित किया।
कुरुराजने सुरराज को, रण साज से मोहित किया॥

(७९)

वाचक! उसे, निज शौर्य्य मद में, मत्त रहने दीजिये।
पाण्डव-सभा की ओर, अपनी दृष्टियां तो कीजिये॥
सेनेश-पद पर शल्य का, अभिषेक सुनकर त्रस्त हो॥
हरि से युधिष्ठिर ने कहा, चिन्ताकुलों से व्यस्त हो॥

(८०)

माधव ! सुयोधन से, बलीश्वर शल्य उत्साहित हुए।
संग्राम करने के लिये, वे सर्वथा सज्जित हुए॥
है भार सब कुछ आप पर, जो हो उचित सो कीजिये।
रक्षा सदा से पांडवों की, की अभी भी कीजिये॥

(८१)

हरि ने कहा भारत ! सुनो, उसने किया निज कार्य है।
आचार्य के बदले अभी, प्रस्तुत किया आचार्य है॥
संग्राम में जानो उसे, वह सिंह-सम ही वीर है।
रण विज्ञ है रण मध्य वह, अति धीर है गंभीर है॥

(८२)

वह अद्वितीय बलिष्ठ है, उसका भयंकर तीर है।
प्रलयान्तकारी वीर है, रण-शूर वज्र शरीर है॥
वह कर्ण भीष्म समान है, वीराग्र गण्य सुजान है॥
जानो, महारथियों सबों से, श्रेष्ठ है बलवान है॥

(८३)

कुरुराजने जिस वीर का, छल से किया अभिषेक है।
सचमुच नहीं उसके समान, बलिष्ट वीर अनेक है॥
अध्यक्षता में शल्य की, प्रभुता थकेगी पार्थ की।
सम छल बलों के सामने, होती न जीतें स्वार्थ की॥

(८४)

भीमादिकों की शूरता, लेगी विजय उससे नहीं।
संसार में कोई नहीं है, वीर दृढ़ उससे कहीं॥
सुरराज शिव यमराज से, डरता न है संग्राम में।
निःसीमता है शौर्य की, भारत! महाबलधाम में॥

(८५)

उसका विजेता एक हो तुम, और है कोई नहीं।
पाकर समय कब? क्षत्रियोंने, वीरता खोई कहीं॥
डरना न समुचित है सदा, हिंसाअघों के कर्म से।
बढ़कर न होता धर्म, कोई क्षत्रियों के धर्म से॥

(८६)

यद्यपि तुम्हारे तात हैं, वे वध न करने योग्य हैं।
पर शत्रुपक्ष-अधीन,-वीरविहीन होने योग्य हैं॥
दुर्जन जनों का दल सहित, संहार करना धर्म है।
शठता नहीं सहना शठों की, वीर का ही कर्म है॥

(८७)

इस हेतु सज्जित सर्वथा, करता तुम्हें रण के लिये।
होगी परीक्षा शल्य से, हे धर्मनृप! जय के लिये॥
अपना तपोबल क्षात्रबल, बस आज दिखलादो हमें।
हे वीर कुन्ती पुत्र! क्षत्रिय धर्म बतलादो हमें॥

(८८)

ममता अहिंसा-मोह समता, और क्षमताएं सभी।
आने नहीं दो पास, बैरी की शुभाकांक्षा अभी॥
तुम वीर शल्य विपक्ष में, मत पक्ष-अवलम्बन करो।
मामा नहीं भगिना नहीं, बस एक मत धारण करो॥

(८९)

अवरुद्ध कण्ठ निनाद से, कहने लगे धर्मज तभी।
भगवन्! मुझे इस कर्म का, भागी बनाते क्यों? अभी॥
यद्यपि तुम्हारी भारती में, सत्यता का वास है।
हिंसा-नदी में पुण्य बहता, यह नहीं विश्वास है॥

(९०)

हे धर्म पथ-दर्शक हरे! आज्ञा तुम्हारी जो हुई।
कोई न उल्लंघन करेंगे, वेदवाणी जो हुई॥
वह पाप कर्म विशाल हो; वा पुण्य का ही कार्य हो।
बोलो जनार्दन? क्यों? नहीं, इस दास को स्वीकार्य हो॥

* प्रथम खण्ड समाप्त *

अथ

शल्य-वध

❀ द्वितीय खण्ड ❀

होते दिवाकर के उदय, रणसाज सब सजने लगे।
तलवार आयुध आदिकों को, तीक्ष्ण कर रचने लगे॥
कवचादिकों से हो विभूषित, वीरगण जयकार से।
भरने लगे रण-भूमि को, संग्राम के विस्तार से॥

(२)

रण के कई बाजे वहाँ, घनघोर-सा बजने लगे।
उत्साह सैन्य-समूह में, परिपूर्ण वे सजने लगे॥
हिलने लगी रण-मेदिनी, आकाश भी फटने लगे।
देखो! रणस्थल सैन्य से, चींटी तरह पटने लगे॥

(३)

गुरुपुत्र कृप कृत शकुनि, दुर्योधन सबान्धव थे जहाँ।
वह शल्य वीरों की तरह, बोला सबों से यह वहाँ॥
करना न रण कोई, अकेला पाण्डवों के साथ में।
रण से विमुख होना नहीं, हो शस्त्र जब तक हाथ में॥

(४)

छोड़ो नहीं उसको अकेला, जो समर में व्यस्त हो।
प्रस्तुत रहो रक्षार्थ ही, ये प्राण चाहे ध्वस्त हो॥
प्रतिकूल इसके, जो लड़ोगे तो गिरोगे नरक में।
भागी बनोगे पातकों के, गति न होगी समर में॥

(५)

यह कह बनाया, सर्वतो भद्रक भयंकर व्यूह को।
रक्षार्थ रक्खा, निज त्रिभागों में सुवीर-समूह को॥
सब भार बायीं ओर के, शिर पर लिये कृत थे खड़े।
त्रैगर्त सेना साथ में, हैं अचल-सम अविचल अड़े॥

(६)

शक और यवनों के सहित, गजराज-सम कृप वीर थे।
दक्षिण दिशा रक्षार्थ वे ले शस्त्र कर में धीर थे॥
थे पृष्ठ दिशा गुरुपुत्र वर, काम्बोज गण के साथ में।
आचार्य सम ही आर्य वे, कोदंड ले निज हाथ में॥

(७)

थे मध्यमें, शस्त्रास्त्र सज्जित वीर दुर्योधन खड़े।
रक्षक प्रधान प्रधान, उसके सङ्ग थे कौरव बड़े॥
रणधीर अश्वारोहियों के, साथ शकुनी था वहीं।
जिसने रचा यह खेल है, वह दूर हो सकता कहीं॥

(८)

इस भाँति रचकर व्यूह को, अति गर्व गौरव से भरे।
आगे हुए सब शूर जन के, दिव्यतम द्युति को धरे॥
इस काल एक विशाल रथ पर, शल्य यों शोभित हुए।
जो देख सुर-सेनेश कार्तिक, देर कुछ क्षोभित हुए॥

(९)

इस ओर धर्मनरेश पाण्डव सैन्य से आहत हुए।
रण-हेतु सम्मुख शल्य के रण शस्त्र से सज्जित हुए॥
जो क्रोध बरसों से छिपा था क्षान्ति शान्ति-तड़ाग में।
बाहर निकल वह अग्निज्वाला-सा हुआ रण-याग में॥

(१०)

हरि के कथन से शल्य-वध का सत्य प्रण करना पड़ा।
देखो! अहिंसा के व्रती को शस्त्र अब धरना पड़ा॥
वे आज कितने क्रुद्ध हैं यमराज सम विकराल हैं।
अधिकार लेने के लिए शिव-तुल्य वे रण-काल हैं॥

(११)

इनके त्रिभागों में बली रणधीर वीर बढ़े चढ़े।
द्रौपद शिखंडी सात्यकी थे धृष्टद्युम्न सभी खड़े॥
निज बन्धु वर्गों से इन्होंने और गिरधर से कहा।
साकांक्ष होकर सब सुनो जो ध्यान-पथ में आ रहा॥

(१२)

रथ-चक्र-रक्षक वीर ये दो जो अभी माद्रेय हैं।
रख धर्म क्षत्रिय का लड़ें जो शूर सर्व अजेय हैं॥
रणविज्ञ सात्यकि वीर दायीं ओर की रक्षा करें।
द्रौपद धनुर्धर! आप बायीं ओर का ही भार लें॥

(१३)

हे पार्थ! मैंने पृष्ठ-पथ का भार तव शिर पर दिये।
आगे रहें यह भीम कंटक दूर करने के लिए॥
ऐसी व्यवस्था से रहूंगा अति सबल रिपु-वीर से।
मैं मार डालूंगा उसे हो क्यों? न सुरवर धीर-से॥

(१४)

यह कह सबों से मृत्यु बायीं, जीत दक्षिण कर लिये।
होकर प्रतिज्ञाबद्ध राजाने पुनः गर्जन किये॥
जब सब भटों के साथ रिपु पर की चढ़ाई आपने।
तब भेरियां बजने लगीं पृथ्वी लगी यह कांपने॥

(१५)

दोनों दलों में घोरतम संग्राम अब होने लगा।
हा! भाग्य भारत का वहां उस ओर जा रोने लगा॥
गिरने लगी शर-संग सेना शोणितों से रङ्ग हो।
लेने चलीं शत्र मुंडमालाएं शिवा शिव-संग हो॥

(१६)

सर्वप्रथम माद्रेय ने कैसा मचाया युद्ध है।
प्रलयान्तकारी रुद्र-सम वह रक्त लोचन क्रुद्ध है॥
वह चित्रसेन सुवीर के हो सामने लड़ने लगा।
कहने लगा रे शठ! ठहर सन्धान शर करने लगा॥

(१७)

रे चित्र! सम्मुख काल से होता नहीं क्यों? दूर है।
जाता करी आगे न उसके सिंह-सम जो शूर है॥
पापी न पाता त्राण जो रहता परायण पाप में।
वह नाश होता पास रह दुर्वृत्त के दुख ताप में॥

(१८)

रे वीर-वंश कलंक! तेरा ध्वंस हूं करता अभी।
जो दुष्ट हरि का भक्ष्य है वह भाग भी सकता कभी॥
जो है तुम्हारा प्रिय उसे तू एक बार निहार ले।
है वाण तेरे प्राण-नाश-निमित्त नीच! विचार ले॥

(१९)

कहकर यही नाराच उसने तूण से कर में लिया।
कर लक्ष्य रिपु की ओर धन्वा से उसे झट तज दिया॥
भरने लगा जलवाह सा रव से नकुल सब ओर को।
छिपने लगे कायर कहीं जा देख सायक घोर को॥

(२०)

पर चित्र आगे बाण वह अति अल्प ही मंडित हुआ।
तीखे शरों के घात से तृण तुल्य ही खंडित हुआ॥
फिर एक शर से क्रुद्ध हो कोदंड उसका छिन्न कर।
बढ़ने लगा वह चित्र मर्मस्थान रिपु का भिन्न कर॥

(२१)

कहने लगा कायर अरे! यह शौर्य का संग्राम है।
होता न हल वह बात से बल का जहां पर काम है॥
माद्रेय तू हो वीर पर तव वीरता देखी नहीं।
बलवान आगे निर्बलों की शूरता पेखी कहीं?॥

(२२)

यह कह लगा शर छोड़ने निःशस्त्र उसको देखके।
ज्यों व्याध शर से बींधता नख हीन हरि को पेखके॥
रिपुरथ सहित रथवाह को जब नष्ट उसने कर दिया।
व्रण पूर्ण कर प्रतिगात उसका मार्ग शर से भर दिया॥

(२३)

तब यों नकुल निज दुर्दशा को देख नयनारुण हुआ।
करि देख ज्यों करिराज यम के तुल्य क्रोधातुर हुआ॥
झट शूर वीरों की तरह वह कूद कर रथ-द्वार से।
सम्मुख चला निज शत्रु के उन्मुक्त खर तलवार से॥

(२४)

वह ढाल पर ही चित्र-शर को रोक कर बढ़ता हुआ।
कोपित नकुल-सम शत्रु-रथ पर कूद कर चढ़ता हुआ॥
कुंडल मुकुट के साथ उसने शत्रु-शिर छेदन किया।
गंभीर गर्जन से दिशा को शूर ने भेदन किया॥

(२५)

पांडव रथी गण देख यों जय शंख रव करने लगे।
सब ओर को निज घोर रव से भीम वे भरने लगे॥
भगने लगे रिपु-सैन्य के दल देख उसकी वीरता।
रहती नहीं आगे नकुल के विषधरों की धीरता॥

(२६)

रथ-हीन अस्त्र-विहीन वह कुछ भी न भय कंपित हुआ।
लखकर सुसज्जित वीर को कब ? केसरी चिन्तित हुआ॥
घन-बुन्द जैसे रिपु-शरों से विद्ध उसके गात हैं।
किंशुक कुसुम-तरु की तरह तनु शोणितों से व्याप्त हैं॥

(२७)

लेकर नया धन्वा वहां वह क्रोध में संव्यस्त हो।
चढ़ अन्य रथ पर वीर वह संग्राम मद में मस्त हो॥
करने लगा रव कर्णभेदी वीरवर अनलेख ज्यों।
आकास में जल से भरे करते घनाघन मेघ ज्यों॥

(२८)

यह देख दोनों करण नन्दन सत्यसेन सुषेण जो।
लड़ने लगे निज शक्ति भर, उससे वहां दुर्जय जो॥
करने लगे कौशलप्रदर्शन और वे बढ़ने लगे।
कोपित नकुल पर क्रुद्ध ज्यों दो सर्प हो चढ़ने लगे॥

(२९)

कर लक्ष्य रथ को वाण, सौ सौ वीर वे तजने लगे।
बलवीर माद्री पुत्र के रथ नष्ट अब करने लगे॥
सायक-समूहों से भरा रथ अश्व घबड़ाने लगे।
दुःसह शरों से विद्ध हो रथवान चिल्लाने लगे।

(३०)

हँसकर नकुलने तीव्रतर झटपट लिया शर चार है।
रथ सत्य का विध्वंस कर हय को दिया सुरद्वार है॥
ले एक शर उससे उसे विच्छिन्न धन्वा कर दिया।
शर विद्ध कर तनु को रुधिर के पंक से झट भर दिया॥

(३१)

रे वीर बालक! अज्ञ है रण-नीति में नादान है।
कच्चा अधूरा है अभी, संग्राम से अनजान है॥
घर लौट जा होगी नहीं, तेरी कुशल इस युद्ध से।
निर्विघ्न रहता है न पशु का यूथ करिवर क्रुद्ध से॥

(३२)

क्यों ! जानकर बलिदान हेतुक आ गया है प्राण के ।
जाता न पक्षी बाज-तट बलवान् उसको मानके ।।
रिपु ओर शर सन्धानता दुर्वाक्य यह कहता हुआ ।
माद्रेय धन्वा से सरासर तीक्ष्ण शर तजता हुआ ।।

(३३)

सहता हुआ वह सत्य वज्र-समान रिपु-शर-पात को ।
ले अन्य धनु उससे लगा करने व्रणित अरिगात को ।।
आरूढ़ एक द्वितीय रथ पर शीघ्र हो लड़ने लगा ।
देखो ! शरासन सत्य का कर वृष्टि रण भरने लगा ।।

(३४)

दोनों बली के वाण जा सुरलोक टकराने लगे ।
गिरकर समर में शत्रु का कर विद्ध घबड़ाने लगे ।।
झट सत्य ने शर—संघसे आच्छन्न उसको कर दिया ।
जलवाह ने आडम्बरों से सूर्य को लय कर दिया ।।

(३५)

संहृत हुआ माद्रेय का जब सूत वाणाघात से ।
रथ साथ धन्वा कट गिरा अविराम सायक-पात से ।।
अवरुद्ध उसका मार्ग कर आ रोष में उसने कहा ।
कच्चे हरी के सामने है मृग कुशल कब तक रहा ।।

(३६)

कब ? शत्रुओं के शौर्य बल से केसरी कंपित हुआ ।
रण मध्य में रणधीर कब ? रण मृत्यु से शंकित हुआ ॥
झटपट चला रिपु ओर को रथ-शक्ति लेकर हाथ में ।
संहार कर उसने उसे भेजा सुरों के साथ में ॥

(३७)

इस भांति मरना बन्धु का देखा द्वितीय कुमार ने ।
बहु क्रोध में उन्मत्त हो सहसा लगा शर मारने ॥
माद्रेय के ध्वज अन्य रथ की भी गिरी कट कर कहीं ।
हय सूत युत रथ नष्ट होकर हैं पड़े देखो ! वहीं ॥

(३८)

अपनी विवशता पर उसे कुछ क्षोभ क्रोध हुआ सही ।
कब ? रिपुजनों की वीरता उससे भला जाती सही ॥
सुन शोम-रथ जो था निकट उसपर तुरत आसीन हो ।
करने लगा रण कर्ण-नन्दन रिपुओं में लीन हो ॥

(३९)

कोदण्ड से संत्यक्त शर व्रण-पूर्ण रिपु करने लगा ।
कटने लगा अरि बाण वह रव से वियत् भरने लगा ।
संहारने रिपु-दल लगा माद्रेय जब शर मार के ।
बहने लगे रिपु-गात से नद रक्त शोणित धार के ॥

(४०)

तब क्रुद्ध वीर सुषेण ने हो धीर धन्वा तानके ।
विंशति विशिष कर में लिया तृण तुल्य उसको जानके ॥
सर्वप्रथम माद्रेश—शर उससे वहाँ खण्डित हुए ।
निश्चेष्ट कर सुत शोम को वे वाण रण मण्डित हुए ॥

(४१)

अब तो नकुल के नेत्र देखो ! आग बरसाने लगे ।
ज्यों हो त्रिलोचन के त्रिलोचन आग भहराने लगे ॥
परिपूर्ण धन्वा तानके चटपट लगा शर जोड़ने ।
प्रतिगात उसके लक्ष्य कर सायक लगा वह छोड़ने ॥

(४२)

सुकुमार बालक वीर जबतक युद्ध उससे कर सका ।
थे कण्ठगत कुछ प्राण और सशस्त्र जबतक रह सका ॥
है रक्तमय सारा शरीर अधीर है पर कुछ नहीं ।
है बाल कोमल अङ्ग, पर निर्भीक है बढ़कर कहीं ॥

(४३)

शर पञ्जरों को तोड़ने की युक्ति उसने की सही ।
पर था फँसा मकरी तरह आशा न प्राणों की रही ॥
खर अर्ध चन्द्राकार शर से छिन्न उसका शिर हुआ ।
नीचे गिरा रथ से मही पर प्राप्त सुर-मन्दिर हुआ ॥

(४४)

यह देख कौरव वाहिनी भागी विकल भयभीत हो।
कब ? शस्त्रधारी पाण्डवों से कौरवों की जीत हो॥
आकर निकट मद्रेश के उससे सबों ने यह कहा।
रक्षा करो रक्षा करो सम्मुख नहीं जाता रहा॥

(४५)

यों सुन वहाँ नृप शल्य ने निज सारथी से यों कहा।
आगे बढ़ाओ रथ सबों के अब नहीं जाता सहा॥
ये आज के संग्राम में सम्मुख न मेरे आयेंगे।
कब। भीम अर्जुन सात्यकी मम वाण से बच जायेंगे॥

(४६)

योंही सबों को शल्य ने निज शक्ति भर ढाढ़स दिया।
संग्राम करने के लिए उत्साह ... भर दिया॥
होकर सुरक्षित वीरगण रण हेतु फिर प्रस्तुत हुए।
रण मध्य सप्रण प्राण अर्पण के लिए उद्यत हुए॥

(४७)

दोनों दलों की ओर से अब शर पतन होने लगे।
आघात सह सह वीर सौ सौ भूमि पर सोने लगे॥
नाना तरह के तब वहां पर अपशकुन होने लगे।
चारों दिशाएं रो उठीं जम्बुक सदल रोने लगे॥

(४८)

पर्वत सहित यह मेदिनी भय से लगी तब कांपने।
नत शिर हुआ दश-शतफणी कुक्कुर लगे आलापने॥
रण के भयंकर रूप हरिहर युद्ध-सा होने लगा।
भट शूर अपने प्राण से निज हाथ तब धोने लगा॥

(४९)

नरवीरगण निश्चेष्ट हो शव पर वहाँ गिरने लगे।
धनुर्धीर शल्य सुयोग्य वर जब आप शर तजने लगे॥
क्लेशित हुआ सहदेव निज भ्राता नकुल के सङ्ग ही।
है सात्यकी के रक्तमय किंशुक सदृश प्रत्यङ्ग ही॥

(५०)

शर विद्ध हैं प्रतिगात हो द्रुपदा-तनय सुकुमार के।
अवरुद्ध हैं पथ रिपु-शरों से धृष्टद्युम्न कुमार के॥
मुर्च्छित हुए कितने रथी कितने अमरपुर को चले।
पहने हुए हैं मुण्डमाला रुद्रगण निज-निज गले॥

(५१)

गज अश्वगण चिग्घाड़ कर कर व्योम-पथ भरने लगे।
देखो! पदाति वलिष्ठ दल भय भीति रव करने लगे॥
संहार सारे प्राणियों का शीघ्रतर होने लगा।
क्षिति मातु की बलिवेदियों पर वीरगण सोने लगा॥

(५२)

यों कर दशा पाण्डव-दलों की शल्य फिर आगे बढ़ा।
कर गर्जना घनघोर-सा राजा युधिष्ठिर पर चढ़ा॥
निज शायकों के घात से भरसक इन्हें पीड़ित किया।
सुरनाथ को ज्यों हो निशाचर-नाथ ने सोदित किया॥

(५३)

अब भीम उसकी वीरता गंभीरता को देखके।
सम्मुख हुआ ले सप्त शर तृण तुल्य उसको लेखके॥
शर से शरों का कर निवारण और कुछ आगे बढ़ा।
पीड़ित उसे करने लगा वह केसरी-सम हो खड़ा॥

(५४)

कृतवीर उसके सामने आकर वहाँ लड़ने लगा।
देखो! शरासन तान शर-सन्धान वह करने लगा॥
दोनों सुवीरों में वहाँ प्रलयान्त रण होने लगा।
गिरने लगे शर संग शर टंकार रव होने लगा॥

(५५)

जब भीम के रथ-युक्त हय संहृत हुए कृत चाप से।
व्याकुल हुआ वह वायु-नन्दन शत्रु-शर-सन्ताप से॥
तब क्रोध में भरकर गदा ले सिंह रव करता हुआ।
कहने लगा, रिपु-बाण बायीं ओर से सहता हुआ॥

(५६)

रे खल ! खड़ा रह देख ! मेरी युग भुजों की वीरता !
यम--दण्ड-सम मेरी गदा की भीरुता गम्भीरता ॥
मत भाग मेरे सामने से, शूर शिक्षा ले सभी ।
कर केसरी रण भीम से, सम्मुख शरासन भी अभी ॥

(५७)

यह कह उठा अपनी गदा, दो बार भुजबल से फिरा ।
भारी तुरत रथ पर हुआ रव वज्र ज्यों गिरि पर गिरा ॥
संहृत हुए रथ-सारथी, संहार अश्वों का हुआ ।
कट कर गिरी रथ की ध्वजा, व्रण पूर्ण रिपु कृत भी हुआ ॥

(५८)

ऐसी परिस्थिति में उसे दुष्कर्म पथ ही श्रेय था ।
होकर विमुख अब भागना, बस एक यह उद्देश्य था ॥
यों अन्यथा उसका नहीं, कल्याण होता भीम से ।
भागे बिना कब क्षुद्र जीवों का भला हो सिंह से ? ॥

(५९)

उसने वहां देखा युधिष्ठिर शल्य नृप से हैं घिरे ।
सब ओर इनके तीक्ष्ण सायक-वृन्द जैसे हैं गिरे ॥
सर्वाङ्ग रक्तव्याप्त हैं, वे अस्त रवि-से व्यग्र हैं ।
लेकर शरासन क्रुद्ध यम-सम शल्य-शूर समग्र हैं ॥

(६०)

उनसे कहा रे म्लेच्छवर! निज को मरा ही जान लो।
मेरी गदा का बल पराक्रम देखलो, पहचान लो॥
अब काल तेरे शीश पर हरि-चक्र-सम है घूमता।
है मृत्यु तेरे सन्निकट, क्यों? यों वृथा है झूमता॥

(६१)

मैं भीम हूं मेरा भयंकर रूप है, कर्त्तव्य है।
सुर-वज्र-सम मेरी गदा के सामने तू वध्य है॥
मैं काल हूं, है काल मेरा भक्ष्य ही जानो सदा।
तुझसे निशाचर के लिए ही घूमता हूं सर्वदा॥

(६२)

सम्भालकर अपनी गदा, कहता हुआ आगे बढ़ा।
धिक्कारता ध्वनि से दिशा को, शत्रु-सम्मुख हो खड़ा॥
द्रुत वेग से मारी विरथ मद्रेश व्याकुल-सा हुआ।
रथ-अश्व इस आघात से निष्प्राण निष्प्रभ-सा हुआ॥

(६३)

हो धीरता जिसमें न वह होता अधीर कभी कहीं।
हो वीरता जिसमें प्रबल, वह रिपु विमुख होता नहीं॥
हो धीर उसने शीघ्र तोमर का प्रहार किया वहीं।
फट कर कवच छेदी गई झट भीम की छाती वहीं॥

(६४)

पर वायु-नन्दन ने किया बढ़ वायु से पुरुषार्थ है।
बढ़कर किया दो पण्डितों से यों समर-शास्त्रार्थ है ॥
छेदी हुई तोमर तुरत ही खींचकर कर में लिया।
रिपु-सारथी का मर्मथल भेदन उसीसे कर दिया ॥

(६५)

वह शल्य के ही सामने शोणित वमन करने लगा।
फिर गिर पड़ा रथ से धरा पर प्राण वह तजने लगा ॥
कुछ काल छटपट कर वहीं पर सर्वदा ही के लिए।
सुरलोक-वासी हो गया सुर-देव-सेवन के लिए ॥

(६६)

रथ-हीन होकर मद्र-पति, कुछ भी न भय-कंपित हुआ।
नखहीन भी कब? केसरी निज शत्रु से शंकित हुआ ॥
कहने लगा लेकर गदा होकर समग्र खड़ा खड़ा।
है आज अद्भुत नीति का, शास्त्रार्थ समरों का बड़ा ॥

(६७)

रे भीम! मेरी बाहु में है शौर्य्य पारावार-सा।
तू देख! रण-कौशल अभी जो है बड़ा विस्तार-सा ॥
तू क्या! विपक्षी विश्व से भी विमुख जाऊंगा नहीं।
मैं काल-भय से भी कभी, संग्राम तज दूंगा नहीं ॥

(६८)

कुछ सोच मरने का न था, संग्राम ही सुरधाम था।
आशा न थी निज-बन्धु को, सोचा नहीं परिणाम था॥
विश्वास रखकर शौर्य का दोनों वहां लड़ने लगे।
ज्यों बालि से सुग्रीव मानो! विकट रण करने लगे॥

(६९)

दोनों गदाधर पण्डितों में जब चलीं रण-नीतियां।
रव वज्र-सा होने लगा छाईं दिशा में भीतियां॥
शर के परस्पर घात से उड़ने लगीं चिनगारियां।
रण-दृश्य दर्शन के लिए आईं गगन से नारियां॥

(७०)

दोनों दलों के वीरगण रण छोड़ हो अविचल खड़े।
परिणाम-पथ को ढूंढ़ते थे, नेत्र जिन जिन के पड़े॥
संदिग्ध हो कुरुराज ने निज नेत्र उस पर दृढ़ किया।
रथ रोककर गोविन्द ने, उस ओर निज मुँह कर दिया॥

(७१)

दोनों बली के बल पराक्रम शौर्य धैर्य अगण्य थे।
श्रीराम-सम ही युग भुजों के शक्ति-संघ प्रशंस्य थे॥
बलभद्रजी को छोड़ कर त्रैलोक्य में वह है कहां।
जो इन गदाधारी भटों का, घात सह सकता वहां॥

(७२)

जब मण्डलाकृत घूमकर सब ओर वे लड़ने लगे।
रिपु को गदा अपनी गदा पर रुद्धकर बढ़ने लगे॥
तब रक्तमय सर्वाङ्ग से शोणित-नदी बहने लगी।
मानो, सरक्त सुमेरु से झरना नदी झरने लगी॥

(७३)

आलोक यह अवलोक पथ पर अल्प ही शोभित हुआ।
कुछ देर सुर-सम शूरवर का शौर्य यों सोहित हुआ॥
मर्माहतों से क्षीण उनकी शक्तियाँ सारी हुईं।
दोनों धरा पर गिर पड़े, फिर साथ ही मूर्च्छा हुई॥

(७४)

देखा! उसे कृपने वहाँ, वह शल्य है मुर्च्छित पड़ा।
निरुपाय है, असहाय है रथ-हीन है, सीदित बड़ा॥
निज रथ उसे आसीन कर तट पर दिया विश्राम के।
झट ले गया बाहर उसे कुछ दूर पर संग्राम के॥

(७५)

मूर्च्छाविगत वह भीम, देखो, मींचने लोचन लगा।
ज्यों शब्द सुनकर शत्रु के हो सिंह सोने से जगा॥
होकर चकित वह निज चतुर्दिक खोजने रिपुको लगा।
ज्यो बाज़ निज आहार को हो हेरने झटपट लगा॥

(७६)

वाचक ! चलें हम सब वहां जिस ओर अर्जुन वीर हैं।
सम्मुख खड़े उनके अभी गुरुपुत्र पण्डित धीर हैं॥
त्रैगर्त्त वीर महारथी गण बहुत उनके साथ हैं।
नाना तरह के तीक्ष्णतर आयुध सबों के हाथ हैं॥

(७७)

पाकर अकेला पार्थ को त्रैगर्त वीरों ने वहाँ।
शर-विद्ध कर पीड़ित किया सब ओर गात यहाँ वहाँ॥
तब पाण्डु-नन्दन पार्थ उसपर वाण बरसाने लगे।
मानो, क्षुधाकुल केसरी ज्यों भक्ष्य हो पाने लगे॥

(७८)

होकर व्यथित शर-संघ से सौ सौ सुभट मरने लगे।
हो ज्यों हवा के वेग से परिपक्व फल गिरने लगे॥
दो दो शरों से अन्य रथियों को दिया बिंध आपने।
सुरलोक भेजा शत्रुओं को पार्थ के शर-साँपने॥

(७९)

यह देख रिपुओं ने सु-वाणों, से उन्हें जर्जर किया।
प्रत्यङ्ग चलनी की तरह, शर-घात से झंझर किया॥
गोविन्द के प्रतिगात वाणों, से व्रणित है कर दिया।
बहु शीघ्र नन्दीघोष रथ, बैठक शरों से भर दिया॥

(८०)

जैसी दशा त्रैगर्त्तने की वीर अर्जुन की वहाँ।
सत्रह दिनों के युद्ध में यों दुर्दशा पाई कहां ? ॥
नाना तरह के पक्षधारी विद्ध रथ में तीर थे।
सायक-समूहों से निहत हो शूर अश्व अधीर थे॥

(८१)

तब क्रुद्ध होकर पार्थ ने गांडीव की टंकार की।
सब वीर माता गो उठीं संभ्रान्त हो संसार की॥
जब पार्थ नामांकित शरों से मार रिपु खाने लगे।
सब ओर अर्जुन ही उन्हें तब दृष्टि में आने लगे॥

(८२)

लोहावरण से बद्ध सुरक्षित सुदृढ़ रथ जो थे वहाँ।
विध्वंस अर्जुन ने किया शर से सहस्रों को वहाँ॥
शर-अग्नि से निज शत्रु-इन्धन को तुरत स्वाहा किया!
तब श्याम सुन्दर आपने जयशंख का घोषण किया॥

(८३)

यह पाण्डुवीर अजेय अर्जुन का पराक्रम देखकर।
रोका उन्हें गुरु-पुत्र ने जब मार तीक्ष्ण अनेक शर॥
तब तो विकट संग्राम दोनों में वहाँ होने लगे।
दोनों दलों के वीर सैनिक धीरता खोने लगे॥

(८४)

द्वादश शरों से पार्थ को गुरु-पुत्रने पीड़ित किया।
दश सायकों से कृष्ण के प्रत्यङ्ग को सीदित किया॥
हँसकर धनञ्जय ने वहाँ गांडीव अपनी ठोक की।
गुरुपुत्र-पूजन कर प्रथम उनसे विजय आशीष ली॥

(८५)

कहने लगा हम क्षत्रियों का सर्वदा संग्राम है।
रण-रक्त से सुष्णात वीरों का यही सुरधाम है॥
शोभा न देता आपको द्विजवीर रण के कार्य में।
रहती दया-भण्डारता है सर्वथा द्विज आर्य में॥

(८६)

पर खेद होता है मुझे हे विप्र! तव कर्त्तव्य से।
तुम अनुसरण कर पापियों के कर्म करते निद्य से॥
रण ठानने पर विप्र से होता महा दुष्कर्म है।
पर क्या? करूं प्रण पूर्ण करना क्षत्रियों का धर्म है॥

(८७)

गुरुपुत्र हो साथी हमारा सर्वदा से हो सही।
देखूं तुम्हारी वीरता लिप्सा मुझे मन की रही॥
है आज अवसर विप्रवर! तुम चाप अपना कर धरो।
हम क्षत्रियों के सामने हे विप्र! धन्वा दृढ़ करो॥

(८८)

यह कह कथा गांडीव से शर दूसरा भी तज दिया।
रथ-अश्व को विध्वंस कर झट सूत का बध कर दिया॥
लेकर पुनः खर भल्ल वह सत्वर लगा सन्धानने।
गुरुपुत्र को पीड़ित किया, अर्जुन समर-विद्वान ने॥

(८६)

द्विजवीर ने रथ-सारथी हय-हीन रथ पर हो खड़े।
स-क्रोध लोहे का लिया मूसल स-खर भीषण बड़े॥
कर लक्ष्य मारा पार्थ को ज्यों जीत अर्जुन कर लिये।
पर वीर अर्जुन ने उसे भी सात टुकड़े कर दिये॥

(६०)

यह देख द्रोण-कुमार ने लोचन अरुण था कर लिया।
लेकर भयंकर परिघ एक प्रहार उसपर कर दिया॥
हंसकर शिकारी-सा तुरत ही पञ्च शर निज कर लिये।
सहसा धनञ्जय ने उसे भी, खंड सौ सौ कर दिये॥

(६१)

अब वह धनञ्जय के विमुख हो सुरथ से लड़ने लगे।
करके निशाना तीर का प्रतिगात व्रण करने लगे॥
तब सुरथने पुरुषार्थ भर, शर-वृष्टि उनपर की वहाँ।
मर्मस्थलों को विद्धकर, पीड़ा उन्हें कुछ दी वहाँ॥

(६२)

यह देख उनकी धृष्टता उनको अमर्ष बड़ा हुआ।
मानो लिपटती आग में घृत हो अगण्य पड़ा हुआ॥
झटपट उन्होंने धनुष पर नाराच भीरु चढ़ा लिया।
इससे उसे निःप्राण कर सुरलोक ओर बढ़ा दिया॥

(६३)

रथ पर उसीके शीघ्र ही, आसीन आसन कर लिया।
संसप्तकों के साथ अपने हाथ धन्वा धर लिया॥
शर खींचकर निज त्रोण से मर्मस्थलों को विंध दिया।
गुरुपुत्र ने जब पार्थ को फिर यह समर शिक्षण दिया॥

(६४)

तब शत्रुओं के साथ अर्जुन का विकटतर रण हुआ।
संसप्तकों के शूर सैन्यों का विचित्र मरण हुआ॥
यम-लोक की अति घोर आबादी वहाँ बढ़ने लगी।
रण की रुधिर धारा वहां कल्लोल कर चढ़ने लगी॥

(६५)

गांडीव से खा मार कितने वीर हैं मूर्च्छित पड़े।
वे त्राण पाये हैं नहीं आगे कथंचित् जो पड़े॥
साहस पराक्रम भूलकर वे भागने रण से लगे।
जैसे अजा के झुण्ड वृक को देख सम्मुख से भगे॥

❀ इति द्वितीय खण्ड ❀

अथ

शल्य-वध

❀ तृतीय खण्ड ❀

पाकर समय मद्रेशने विषबाण अपना हाथ ले।
प्रतिपक्षियों पर की चढ़ाई सैन्यगण को साथ ले॥
दोनों दलों की वीर सेनायें पुनः जाकर मिलीं।
मानो उदधि से गर्जना करती हुई सरिता मिलीं॥

(२)

होने लगे शर-पात कर फुत्कार भय देते हुए।
कर पान शोणित बुन्द रिपु के प्राण हर लेते हुए॥
केवल कुतूहल-वश किसीकी युग भुजाएं काट दीं।
रण-भूमि अगणित भट-समूहों के रुधिर से पाट दीं॥

(३)

यह देख पाण्डव वीर धीर महारथी आगे बढ़े।
वर वाण बरसाते हुए कौरव-दलों पर जा चढ़े॥
होकर सुसज्जित शस्त्र से धर्मज युधिष्ठिर आपने।
गर्जन किया जब चाप ले तब भू लगो यह कांपने॥

(४)

कृप कृत शकुनि के साथ मद्राधीश रण करने लगा।
निज नाम अंकित सायकों से सब दिशा भरने लगा॥
निज अक्षि के प्रत्यक्ष लखकर पाण्डुवर बलवान को।
बढ़ने लगा उस ओर वह ले प्राणहारी वाण को॥

(५)

कहने लगा, हे हे अहिंसा के व्रती ! क्या आप हैं ? ।
सहते महा समराग्नि-सायक-संघ के सन्ताप हैं॥
खो दी कहाँ तुमने उसे जो थी तुम्हारी धीरता।
है आ गई तुम में कहां से यह अलौकिक वीरता॥

(६)

अच्छा लड़ो, उस ओर जा, सम्मुख न आओ वाण के।
निष्ठुर विनाशी तीर धन्वासीन हैं रिपुप्राण के॥
होता न सम्मुख काक, बलशाली विपक्षी बाज़ के।
क्यों व्यर्थ देते प्राण ? आ तट मद्रके अधिराज के॥

(७)

यह कह बलीश्वर शल्यने उनको प्रगति रोकी वहाँ।
ले तीक्ष्ण शर आहत किया उसके शरीर जहाँ तहाँ॥
जब शल्य कर से त्यक्त शर भय-युत लगे फुत्कारने।
धृति शौर्य्य तज कर अश्व गज भी तब लगे चिग्घारने॥

(८)

कहने लगे तब धर्मराजा मद्र नृप से यह कथा।
तुम हो हमारे योग्य रण में शस्त्रधारी सर्वथा॥
आओ, लड़ूं, देखूं तुम्हारी रण-कुशलता चाप की।
देखी नहीं कुछ है सुनी गंभीरता जो आपकी॥

(९)

यह कह उठाया चाप जो था भीरु रव करने लगा।
मद्रेश-सैन्य सुवीर के था प्राण जो हरने लगा॥
चौंसठ शरों से विद्ध वह, 'द्रुमसेन' यों शोभित हुआ।
ज्यों लख वसन्तापन्न किंशुक-वृक्ष भी क्षोभित हुआ॥

(१०)

भरने लगा रथ शल्य का सुर वज्र वाण वितान से।
रचने लगे रण-सृष्टि वे रण के महान् विधान से॥
जब शर सरासर स-खर धन्वा से लगा वह छूटने।
प्रतिपक्षियों की तब लगी युग दृष्टि मानो फूटने॥

(११)

नव सायकों से शल्य का दारुक प्रपीड़ित यों हुआ।
बर वाण लगने पर बधिक के वन्य सीदित ज्यों हुआ॥
ले सप्त विंशति तीर वे रणवीर रण-मण्डित हुए।
बेधित हुआ वह चन्द्र उससे शल्य-धनु खण्डित हुए॥

(१२)

कहने लगा तब शल्य उनकी वीरता अवलोक के।
सत्य-व्रती! तुम हो प्रशान्त सुवीर वर सुरलोक के॥
हो दक्ष शीघ्र समक्ष मेरे चाप अपना कर धरो।
या तो सहो दुख-ताप, या खण्डित हमारा शर करो॥

(१३)

यह कह धनुष ले शल्यने रण-रूप मानो धर लिया।
चट पञ्चविंशति चेदियों का नष्ट जीवन कर दिया॥
कोदण्ड की टंकार कर, कर सिंह-सम ही गर्जना।
पचीस शर कर में लिये, देकर दिशा को भर्त्सना॥

(१४)

उसने उसीसे सात्यकी का, मर्म-संभेदन किया।
ज्यों हो कमल के पत्र को सुई नोक से छेदन किया॥
लेकर पुनः जब पञ्चशर वह शल्य रण तत्पर हुआ।
माद्रेय के ही साथ क्रोशित भीम रण-घस्मर हुआ॥

(१५)

तब रक्त कर युग दृष्टि उससे धर्म-पुत्र निहार के।
दिनकर किरण सम तीक्ष्ण सायक चाप पर झट धार के॥
कहने लगे कर्तव्य तव मुझको नहीं जाता सहा।
मम तीर को जो खण्ड कर तू वाण बरसाता रहा॥

(१६)

देखो! इधर यह व्याल रूपी विशिख भीरु कठोर है।
अब तक रहा जो शान्त वह हुआ तुम्हारी ओर है॥
यह कह उसीसे शल्य को की रथ-ध्वजा विच्छिन्न यों।
वर वात रिप से शुष्क तृण होता विशेष विच्छिन्न ज्यों॥

(१७)

हँसकर पुनः यमराज-सम नृप ने शरासन तान के।
मद्रेश को क्लेशित किया भीषण विशिख सन्धान के॥
स-क्रोध राजा शल्य तब प्रलयाग्नि बरसाने लगा।
पाण्डव दलों का वीरगण रण [illegible] के [illegible] लगा॥

(१८)

नकुलादि सोमक सृञ्जयों पर भी हुए आघात ये।
पाये न बच मद्रेश-शर से, वात के संघात ये॥
यों ही सबों पर शल्य ने बहु बाण का वर्षण किया।
ज्यों हो शरों से सब दिशा को क्रूर ने अवरुद्ध किया॥

(१९)

तब वे सभी नृप शल्य को, सब ओर मानों घेर के।
करने लगे संवृष्टि शर को मर्म थल को हेर के॥
सक्रोध मारा सप्त शर से भीम ने ललकार के।
क्लेशित नकुल ने कर दिया झट पंच शर से मार के॥

(२०)

ले सप्त सायक हाथ में सहदेव ने संरुष्ट हो।
पीड़ित किया जैसे प्रलय-कालीन शंकर रुष्ट हो॥
चट सात्यकी ने सौ शरों से शूर शिक्षा दी उसे।
घन-गर्जना की देख रुधिर-व्याप्त गजवर-सम उसे॥

(२१)

इन पञ्च वीर महारथी के वाण से अंकित हुआ।
मद्रेश शूर सुधीर कुछ उससे नहीं शंकित हुआ॥
कर घोर गर्जन पञ्चविंशति वाण उसने कर लिये।
झटपट उसीसे सात्यकी के अङ्ग भेदन कर दिये॥

(२२)

लेकर निहत्तर तीर उसने भीम को दे दी व्यथा।
रावण-विशिखने ज्यों किया था खिन्न बन्दर सर्वथा॥
यों शल्य-सायकने नकुल की दुर्दशा कर दी वहाँ।
ऋतुराज के कर से कुसुम ज्यों रंग पाया हो वहाँ॥

(२३)

इक्कीस शर के घात से सहदेव यों क्लेशित हुआ।
ज्यों वन्य शूकर बधिक-शर-संघात से बेधित हुआ॥
सायक सहित धन्वा उसी का कट गिरा कोदण्ड से।
दो खण्ड होता ज्यों कमल का दन्ड हाथी शुण्ड से॥

(२४)

पर रिपु-शरों की वार से सहदेव सुस्थिर-सम रहा।
सत्वर शरासन अन्य ले रण-प्रांत में जाता बहा॥
शरसे उसे अब बींधना प्रारम्भ उसने कर दिया।
जलवाहने ज्यों सूर्य्य बल को अङ्क में हो ढक लिया॥

(२५)

फिर पञ्च शर से शल्य को आच्छन्न उसने कर दिया।
तन विद्ध कर रथ सायकों से वीर ने झट भर दिया॥
व्याकुल हुआ रथ-सारथी रिपु रक्त पेयी वाण से।
कंपित हुआ वह शल्य उसके चाप शर-सन्धान से॥

(२६)

निष्ठुर विपक्षी वाण बार्धी ओर से सहने लगा।
ले तीन सायक हाथ में सहदेव यों कहने लगा॥
तुम तात हो इस हेतु पहले ही जताता हूं तुम्हें।
गुरु द्रोण कर्ण विकर्ण की दुर्गति दिखाता हूं तुम्हें॥

(२७)

रहकर विधर्मी पक्ष में पाया किसी ने त्राण है?
देखो! उधर गांगेय-तनु में विद्ध कैसा वाण है॥
क्यों आज के रण-याग में बलि हेतु तुम प्रस्तुत हुए।
मामा! न समझो और कुछ ये युद्ध हैं अद्भुत नए॥

(२८)

यह कह दिया शर छोड़ चट जौ-तोड़ विस्तृत चाप से ।
पीड़ित हुआ परिपूर्ण राजा शल्य शर-सन्ताप से ।।
उस काल ही उस ओर से छोड़े हुए शर भीम से ।
आकर लगे मद्रेश को कर शब्द वे निःसीम से ।।

(२९)

नौ सायकों से सात्यकी ने क्लेश-युत उसको किया ।
घननाद को ज्यों वीर लक्ष्मणने शरों से दुख दिया ।।
ले षष्टि शर निज हाथ में मारा युधिष्ठिर ने उसे ।
विचलित किया मर्मस्थ शीर्ष-त्राण भेदन कर उसे ।।

(३०)

यह देख उसकी वीरता मद्रेश धनु संभालके ।
लड़ने लगा रिपु से वहाँ पर तुल्य हो रण-काल के ।।
कर पञ्च बाणों का निशाना सब किसीको वीर वह ।
करने लगा गंभीर गर्जन सिंह-सम रणधीर वह ।।

(३१)

तब सात्यकी ने क्रुद्ध होकर तीक्ष्णतर तोमर लिया ।
झट भीम ने नाराच सर्प-समान अपने कर लिया ।।
ले ली नकुलने शक्ति धर्मज ने शतघ्नी खींच ली ।
सहदेव ने यम-दण्ड-सम अपनी गदा झट ठीक की ।।

(३२)

मिलकर सबों ने एक बार प्रहार उसपर हैं किये।
पर शल्य के . रने सबों के खण्ड सौ सौ कर दिये॥
कर सिंह-सम ही गर्जना चट तीक्ष्ण शर कर में लिया।
मद्रेश ने इन पञ्च को कुछ दूर पीछे कर दिया॥

(३३)

पर सात्यकी से शत्रु का गर्जन वहाँ न सहा गया।
यह देख उसकी शूरता उस वीर से न रहा गया॥
दो तीक्ष्ण तीरों से उसे मरकृत मर्माहत किया।
झट तीन शर से शल्य के रथसूत को आहत किया॥

(३४)

तब क्रुद्ध होकर शल्यने मारा सबों के गात पर।
खेदित किया सबको पुनः दश दश शरों से घात कर॥
अपने शरों से अरि शरों का इस तरह खण्डन किया।
श्रीराम-शर को युद्ध में जिस भाँति रावण ने किया॥

(३५)

यों शल्य-आयुध-घात से ये वीर कुछ कंपित हुए।
ज्यों केशरी को देख कुञ्जर मत्त भी शंकित हुए॥
अपनी विजय को देख कुरुवरने वहाँ मुदभर लिया।
कुछ-कुछ विजय आभास का यह दृश्य अंकित कर लिया॥

(३६)

अब शल्य का कोदण्ड सायक का वमन करने लगा।
रिपु-वीर का शिर काट चण्डी-अर्चना करने लगा॥
नर रुण्ड-मुण्डों से रणस्थल को तुरत भरने लगा।
रिपु-रक्त से सुष्णात शर भूपर कहीं गिरने लगा॥

(३७)

रिपु-बाण व्यालों से युधिष्ठिर पूर्ण परिपीड़ित हुए।
ज्यों हों हरिण दावाग्नियों से सर्वथा सीदित हुए॥
सब ओर का पथ रुद्ध पाकर आप कुछ शंकित हुए।
अपनी प्रतिज्ञा याद कर कुछ देर यों चिन्तित हुए॥

(३८)

हमसे जनार्दन की कही बातें हुईं पूरी नहीं।
संहार करना शल्य का है खीर टेढ़ी-सी कहीं॥
ऐसा न हो कि सुवीर वह बहु क्रोध में आकर अभी।
संहार कर डाले हमारी वीर सेनाएं सभी॥

(३९)

इस भांति चिन्ता कर रहे थे आप पृथ्वीपति जहाँ।
गज-अश्व-रथियों के बहुत सैनिक सदल पहुंचे वहाँ॥
तब सर्वथा मद्रेश को पीड़ित सभी करने लगे।
सौ सौ शरों से शल्य-रथ को शीघ्रतर भरने लगे॥

(४०)

पर शल्यने इस वाण-वृष्टि विशाल को वारण किया।
देखो! दिशा को शर-समूहों से ठसाठस भर दिया ॥
लाखों-करोड़ों तीर पाण्डव वीर पर गिरने लगे।
आकाश से ज्यों टिड्डियों के संघ रण भरने लगे ॥

(४१)

मद्रेश के जब वीर वाणोंने वियत् को भर दिया।
तम-पुञ्जने रण-भूमि पर अधिकार मानो कर लिया।
क्लेशित युधिष्ठिर भीम आदि महारथी उससे हुए।
शरघात खाकर सैन्य-दल व्याकुल परावृत-से हुए ॥

(४२)

तब शल्य भीषण शब्द कर सायक पुनः लेता हुआ।
टंकार कर धन्वा उसीसे भीति अति देता हुआ ॥
कहने लगा-तुम पञ्चवीर सुधीर हो मुझसे लड़ो।
रिपु-प्राण-घातक वाण के आगे सुधन्वा दृढ़ करो ॥

(४३)

यह शूर वर का शौर्य्य-दर्शन के लिए संग्राम है।
होगी उसीकी जीत जो सब भाँति ही बलधाम है ॥
सम्मुख सहो शर-घात होता वज्र वाणाघात जो।
हे सत्यवादी! विमुख हो मम सामने धन्वा तजो ॥

(४४)

निर्विघ्न वह जाता नहीं जो ठानता रणवीर से।
गज प्राण पर भी खेलकर पाता न जय हरि धीरसे॥
कहता हुआ सहदेव की ही ओर सायक तज दिया।
कोदण्ड उसका छिन्न कर व्रण गातमें कुछ कर दिया॥

(४५)

लेकर पुनः शर तीन उससे धर्मनृप को मारके।
गर्जन किया उसने वहाँ धन्वा महा विस्तार के॥
झट शल्य के कोदण्ड से शर दूसरा भी छूटकर।
शोभित हुआ रण-भूमिमें चट सात्यकी धनु टूककर॥

(४६)

क्यों? आप सहते ताप हैं रिपु-कष्टकारी वाण का।
इच्छुक न है यह धर्मराजन? जान लो तव प्राणका॥
यह खोजता है भीम, अर्जुन, सात्यकी बलवान को।
संग्राम करता वीर लखकर शौर्य्य साहसवान को॥

(४७)

करता समर जो निर्बलों से वह न होता वीर है।
पौरुष दिखाता है न पशु से सिंह जो रण-धीर है॥
यह कह लिया, शर सात उसने चाप पर फिर धर दिया।
राजा युधिष्ठिर को उसीसे विद्ध व्याकुल कर दिया॥

(४८)

पहुंचा सुयोधन आप रिपु-सम्मुख वहाँ इस बीच में।
ज्यों हो फँसा हठ-वश पथिक सज्ञात दुस्तर कीच में॥
उसने प्रथम ही भीम को कुछ शस्त्र का परिचय दिया।
बल थाहने के हेतु पर्वत-राज से टक्कर लिया॥

(४९)

कोदण्ड उसका छिन्न कर झट काट दी रथ की ध्वजा।
जाग्रत किया यों सिंह को रण-साज से उसने सजा॥
तब भीमने सक्रोध झटपट दूसरा धन्वा लिया।
अङ्गार-सम ही शक्ति-शर कर घोर शब्द चढ़ा दिया॥

(५०)

कहने लगा रे रे अधम! होता न क्यों तू दूर है।
उस वीर का यह खेल है जो शौर्य्यधारी शूर है॥
क्रीड़ा न जूए की यहाँ जिसमें कपट का काम है।
अब क्या? अरे! तू सोचता तुझ पर विधाता वाम है॥

(५१)

कुरुराज! तव दुष्कर्म का जो आज यह परिणाम है।
है रक्तमय रे देख! धरिणी जो विकट संग्राम है॥
रे देख! मेरी शक्ति यह कैसी विशाल कठोर है।
सह, तान छाती अब उसे होती तुम्हारी ओर है॥

(५२)

कर लक्ष्य वक्षस्थानको झट शक्ति छोड़ी धीर हो।
उल्का पतन घनने किया ज्यों कर गरज गंभीर हो॥
लोहावरण को छिन्न कर वह लय हुई तन बिध वहीं।
तन से रुधिर धारा बहाकर गिर पड़ी भू पर कहीं॥

(५३)

खर शक्ति के संहार से कुरुदेव ने पाई व्यथा।
जैसे वधिक से विद्ध मृग हो कष्ट पाया सर्वथा॥
रथ-बैठकी में गिर पड़ा कुरुराज मोहाच्छन्न हो।
जैसे मृगी निश्चेष्ट होती अग्नि ज्वालापन्न हो॥

(५४)

झट एक तीक्ष्ण क्षुरप्र उसने त्रोण से कर में लिया।
तत्काल ही रिपु-सारथी का प्राण उससे हर लिया॥
स्वामी-विहीन रथाश्व तब रथ दूर ले भागा कहीं।
रक्षक न कोई देख क्यों? डरपोक भग जाता नहीं॥

(५५)

कृतवर्म कृप के साथ द्रोणी दौड़ आया आर्त्त यों।
आते बड़े जन देख विपदापन्न प्रिय रक्षार्थ ज्यों॥
संज्ञार्थ ले आया उसे संग्राम से कुछ दूर पर।
तब वायु-नन्दन वाण बरसाने लगा रिपु-शूर पर॥

(५६)

नलिनी दलों को छिन्न करता है कुपित करिराज ज्यों।
बैरी विपिन विध्वस्त करते हैं युधिष्ठिर आज त्यों॥
जिस ओर उनकी दृष्टि जाती आग बरसाती हुई।
बैरी घटा कटकर गिरी रण-कीर्ति दरसाती हुई॥

(५७)

रण-भूमि में मृत शव पड़े हैं साश्व कितने सारथी।
विच्छिन्न रथ ध्वज साथ ही विच्छिन्न है रथ-युत रथी॥
चींटी तरह संहार अश्वारूढ़ का होने लगा।
पैदल दलों का संघ लोचन बन्द कर सोने लगा॥

(५८)

सुनकर घनाघन क्रुद्ध करता केसरी निर्घोष ज्यों।
करने लगे सक्रोध दोनों शंख से जयघोष त्यों॥
तजने लगे शर लक्ष जैसे पक्षधारी व्याल हो।
कटने लगे रिपु-मुण्ड जैसे नाश करता काल हो॥

(५६)

सायक दलों में छिप गये दोनों धुरीण महाबली।
जैसे छिपा लेती दिवाकर को कभी मेघावली॥
हैं विद्ध सारे अङ्ग पर करते महारण क्रुद्ध हो।
रघुवीर ने लंकेश रावण से किया ज्यों युद्ध हो॥

(६०)

इस काल दोनों का पराक्रम देख सब साश्चर्य्य यों।
कहने लगे लड़ते अभी हैं कर्ण अर्जुन आर्य ज्यों॥
किसकी विजय या हार होगी यह नहीं निश्चय हुआ।
दो सिंह के रण में भला विजयी कहोगे को हुआ?॥

(६१)

मद्राधिपति के हस्त से संत्यक्त शर सौ चण्ड हो।
सम्मुख चले रिपु को लिपटती आग के ज्यों खण्ड हो॥
विच्छिन्न धन्वा कर, लगे वे तीर रिपु के शीश पर।
मानो सुवर्षण है किया घनने विशाल गिरीश पर॥

(६२)

अब तो युधिष्ठिर के तनों में लग गई बस आग-सी।
ज्वाला लगी यों फैलने घृत-पूर्ण कुण्ड सुयाग-सी॥
नर-ध्वंसकारी चाप विद्युत्वेग से निज कर लिया।
ज्यों सृष्टि-लय समकाल धन्वा काल ने हो धर लिया॥

(६३)

खर तीन सौ शर के सुवर्षण से उसे विस्मय दिया।
कुछ देर मानो, चांद को घनखण्ड ने ज्यों लय किया॥
फिर एक घोर क्षुरप्र द्वारा, चाप का खण्डन किया।
देखो! युधिष्ठिर ने इसे कैसा समर शिक्षण दिया॥

(६४)

पर, किन्तु इतने से न धर्मज को हुआ सन्तोष है।
प्रातः दिवाकर-सम उसे चढ़ता हुआ हो रोष है॥
करके निधन रिपु-सारथी का रथ-ध्वजा भी काट दी।
रण-भूमि देखो! धीर ने जो शोणितों से पाट दी॥

(६५)

यह देख उनकी वीरता रिपु धीरता खाने लगे।
ज्यों बाज-सम्मुख विचल पक्षी-वृन्द हो होने लगे॥
वाण-व्यथित मद्राधिपति, की शूरता दबने लगी।
आगे जड़ी के विषधरों की शक्ति ज्यों कमने लगी॥

(६६)

देखी न द्रोणी से गई मद्राधिपति की दुर्दशा।
धर्मज बली से की गई उसकी वहां जो जो दशा॥
निज-रथ उसे आसीन कर भागा वहाँ से शीघ्र ही।
बैरी प्रबल हो तो वहाँ से भागना है ठीक ही॥

(६७)

बैरी न सम्मुख देख ज्यों हरि नाद करता धीर हो।
करने लगे त्यों ही युधिष्ठिर गर्जना गम्भीर हो॥
बिपिनस्थली में खोजता मृग-झुण्ड को मृगराज ज्यों।
अरि को लगे वे हेरने सब ओर क्रोधित आज त्यों॥

(६८)

तब तक सवधि सज्जित सुरथ पर शल्य वह शोभित हुआ
घन खण्ड निःसृत व्योम में ज्यों प्रौढ़ रवि सोहित हुआ ॥
दर्शित हुई सौदामिनी-सम शल्य-कर में धनु छटा।
तजने लगे शर तीक्ष्ण जब गिरने लगी सेना-घटा ॥

(६९)

अहि-तुल्य रिपु दश बाण से हत भाल सात्यकि का हुआ।
मानो, उदय गिरि पर उदय दश बाल-रवियों का हुआ ॥
निःसीम पीड़ा भीम को तीखे त्रिबाणों से हुई।
उससे सहा सहदेव को भी व्रण व्यथा कुछ कम हुई ॥

(७०)

अब धर्मनृप के सन्निकट आ विकट शर तजने लगा।
दशमुख सदृश वह अट्टहास महान रव करने लगा ॥
शर लक्ष्य वक्षस्थान के कर लक्ष्य वह बढ़ने लगा।
अति क्रुद्ध कार्त्तिक-सम वहाँ वह शत्रु से लड़ने लगा ॥

(७१)

सौ खण्ड होता अल्प तृण ज्यों बात के आघात से।
त्यों खण्ड होकर गिर पड़ा रिपु-बाण नृप-शर घात से ॥
फिर एक धन्वासीन हो शर आग बरसाता हुआ।
रिपु-कर्ण-बिवरों कौरवों से भीति दरसाता हुआ ॥

(७२)

भूपर गिरा विद्युत तरह रिपु के कवच को चीरता।
बलवान् राजा शल्य की वह तीर छाती छेदता॥
मुर्च्छा हुई दुःसह दुखों से विकल रथ पर गिर पड़ा।
कुछ क्षण रहा वह वीर यों विश्राम-तट पर पट पड़ा॥

(७३)

रिपु-शब्द सुनकर केशरी ज्यों नींद से है जागता।
झट कर युगों से मीच लोचन शत्रुओं को ताकता॥
साश्चर्य्य त्यों ही शल्य ने रिपु हेर धन्वा धर लिया।
दो खण्ड रिपु कोदण्ड को दो सर्पशर से कर दिया॥

(७४)

सौ सायकों के घात से तनु मांस रेणु उड़ा दिया।
मानो तुलों से सब दिशा को वीर ने ही भर दिया॥
नौ बाण रिपु के भीम के लोहावरण को छिन्नकर।
मर्मस्थलों में घुस गये उसकी भुजा को भिन्न कर॥

(७५)

जब तक उठाकर अन्य धनु रिपु ओर धर्मज ने किया।
पर छिन्न तब तक ही उसे भी शल्य-सायक ने किया॥
कृप के शरों से मार खाकर सूत गतजीवन हुआ।
रण-धाम से जाकर बली सुरदेव-सेवा-रत हुआ॥

(७६)

रथवान् अश्वों को गिराया शल्य ने संहार के।
धिक्कृत किया सब ओर को घनघोर रव विस्तार के॥
झट सामने उनके वहीं वह नष्ट दल करने लगा।
फल-युक्त बन को वीर बन्दर भ्रष्ट ज्यों करने लगा॥

(७७)

की मद्र-भूषण ने वहां यों धर्म-नन्दन की दशा।
जैसे नकुल से सर्प की होती कभी है दुर्दशा॥
तब भीम ने निज दृष्टि रिपु की ओर है विस्तार की।
जलती हुई क्रोधाग्नियों से एक बार निहार ली॥

(७८)

मारा महा भीषण सुतीक्ष्ण प्रचण्ड शर कोदण्ड से।
हो खण्ड धन्वा गिर पड़ा मद्रेश के कर दण्ड से॥
झट अन्य शर-संघात से रथ चूर्ण उसका कर दिया।
रिपु सारथी का प्राण उसने बाण से झट हर लिया॥

(७९)

कंपित हुआ कुछ भी न शल्य सुवीर रिपु के वार से।
सम्भाल कर असि ढाल वह कूदा तुरत रथ द्वार से॥
रिपु-बाण काल समान सौ सौ शीश पर गिरता रहा।
पर ढाल पर वह टाल कर बैरी निकट बढ़ता रहा॥

(८०)

संछिन्न कर ईषा नकुल-रथ की उसी से वीर वह।
घननाद-सम ही नाद फिर करता हुआ रणधीर वह ॥
धर्माधिपति सम्मुख चला तलवार निज संभाल के।
दर्शित हुआ वह शम्भु-सम ही सृष्टिलय समकाल के ॥

(८१)

यह लख शिखण्डी सात्यकी हैं धृष्टद्युम्न कुमार जो।
रणधीर पञ्च सुपुत्र द्रुपदा प्राण के आधार जो ॥
सहसा सभी सौदित उसे करने लगे आकर वहाँ।
धनु तानके शर भानु-सम तजने लगे उस पर वहाँ ॥

(८२)

झट भीम ने नौ शर लिये हो क्रुद्ध यम-सम काल के।
टुकड़े उसी से कर दिये उस रिपु कर-स्थित ढाल के ॥
फिर एक भल्ल प्रहार से तलवार उसकी काट दी।
तन से रुधिर-धारा बहाकर भूमि उससे पाट दी ॥

(८३)

यों उन सबों से मार खाकर शल्य शोणितमय हुआ।
निःशस्त्र रावण बन्धु-ज्यों रघुवर विशिख से था हुआ ॥
पर सिंह-सम ही वीर वह रिपु ओर पग धरता हुआ।
सहने लगा वह शत्रु-सायक घोररव करता हुआ ॥

(८४)

पाण्डव सदल सामोद तब हरिनाद यों करने लगे।
ज्यों कर विपद् आच्छन्न घन-रव से दिशा भरने लगे॥
सुनकर भयङ्कर गर्जना शोणितमयी सेना सभी।
तजकर दिशा का ज्ञान मूर्छित-सी हुई भय पा तभी॥

(८५)

हरि के कथन-अनुसार धर्माधारने जो प्रण किया।
करके स्मरण उस काल उसने शल्य-वध निश्चय किया॥
जलती हुई युग-दृष्टि यों से शत्रु देह निहार ली।
ज्यों आँख शंकरने मदन पर क्रुद्ध हो विस्तार की॥

(८६)

जा शक्ति पूजित सर्वदा थी चन्दनादिक से हुई।
धूपादिकों से पाण्डवों द्वारा महादृत थी हुई॥
अति प्रज्ज्वलित प्रलयाग्नि-सम उपमा रहित थी द्युतिधरा।
फिर अङ्गिरा से की हुई उत्पन्न कृत्याकृति धरा॥

(८७)

निर्मित नियमतः विश्वकर्मा से हुई थी शक्ति जो।
त्रोणस्थ अब तक अति सुरक्षित थी सश्रद्ध सभक्ति जो॥
वह स्वर्ग शोभित रत्न युत धर्माधिपति ने खींच ली।
मन्त्रित भयंकर मन्त्र से कर शल्य सम्मुख ठीक की॥

(८८)

जब सप्रयत्न सशक्ति वह छोड़ी गई धर्मेश से।
चिनगारियां उड़ने लगीं तब आग की द्रुत वेग से॥
था रोकना उसका कठिन संसार भर के वीर से।
पर सहन करने के लिए वह वीर गर्जा धीर से॥

(८९)

हा! किन्तु वसुधा-वीर की वह शक्ति छाती छेदती।
लय हो गई रण-भूमि में मर्मस्थलों को भेदती॥
कर छिन्न-भिन्न शरीर को अत्यन्त दुख देती गई।
नृप की विशाल सुकीर्ति अपने साथ ही लेती गई॥

(९०)

कर वीर-चुम्बन शल्य वारंबार मां की गोद के।
संभोग का भागी हुआ स्वर्गीय अति आमोद के॥
तब हर्ष से हरि-नाद पाण्डव वीरगण करने लगे।
जय-शंख के जय-घोष से सब ओर हरि भरने लगे॥

(९१)

गंभीर गर्जन से गगन को पूर्ण वे करने लगे।
राजा युधिष्ठर सिंह-सम ही शीघ्रतर बढ़ने लगे॥
तत्काल ही धन्वा उठा सन्धान शर करने लगे।
वैरी भटों को मार कर रणभूमि वे भरने लगे॥

(६२)

जब तीक्ष्ण शर से शत्रु-शिर द्रुतवेग से कटने लगे।
तब संग ही रिपु-रक्त रुधिरों से समर पटने लगे॥
धम-धम धरा पर चण्डशर से मुण्ड यों गिरने लगे।
ज्यों जाम्बुफल गिरकर महीको वायु से भरने लगे॥

(६३)

नृप-वाण से खा मार रिपुने धीरता यों छोड़ दी।
ज्यों लड़ गरुड़ से सर्पने हो व्यस्त यमुना छोड़ ली॥
हो खिन्न प्रज्ञाहीन हाहाकार रिपु करने लगे।
निज युग करों से निज दलों का नष्ट कर मरने लगे॥

(६४)

यह देख मद्राधीश को लघु बन्धु क्रोधातुर हुआ।
वह बन्धु-सम ही वीर पाण्डव धीर के आगे हुआ॥
बहु शीघ्रता के साथ खर नाराच उसने कर लिया।
राजा युधिष्ठिर ओर धन्वा से उसे जब तज दिया॥

(६५)

तब काल-सम हो क्रुद्ध नृपने खण्ड उसका कर दिया।
झट पट शरों से विद्ध कर तन शोणितों से भर दिया॥
ले दो क्षुराकृति वाण उसने रिपु-धनुष खण्डन किया।
रिपु रथ-ध्वजा को छिन्नकर गंभीर घन गर्जन किया॥

(९६)

त्रिशिरा-हनन कारण लिया था वाण ज्यों रघुराजने।
त्यों भल्ल अपने कर लिया हो क्रुद्ध पाण्डवराजने ॥
ज्यों छिन्न होता शिर अजा का तीक्ष्णतर तलवार से।
त्यों शल्य के लघुबन्धु का शिर कट गिरा उस वार से ॥

(९७)

तमपुञ्ज होता दूर ज्यों सप्रखर कर मार्त्तण्ड से।
निःशत्रु थल होने लगा त्यों धर्मनृप कोदण्ड से ॥
यदुवंश का यदुवंशियों से नाश था जैसा हुआ।
त्यों भागते कौरव-दलों से नाश कुरुदल का हुआ ॥

(९८)

यह देख कर कृत वीर धन्वा पर लगा शर जोड़ने।
बढ़ते हुए आगे विपक्षी को लगा वह रोकने ॥
ज्यों बूंद भादो मासमें वारिद लगा हो छोड़ने।
त्यों वाण की अति वृष्टि कर रिपु-शिर लगा वह फोड़ने ॥

(९९)

पर सात्यकी से शत्रु-रण कौशल न यह देखा गया।
सुरराज सम ही रक्त दृग उसका वहां पेखा गया ॥
छूटने लगा वह रिपु-शरों को पूर्ण धन्वा तान के।
करने लगा आघात कृत को तीक्ष्णतर निज वाण के ॥

(१००)

कृतवीरने दश वाण तब निज त्रोण से कर में लिये।
झटपट उसीसे सात्यकी के अङ्ग-भेदन कर दिये॥
तीखे त्रिशर से मार कर रथवाह को दे दी व्यथा।
खण्डित किया धन्वा उसीका एक शर से ही तथा॥

(१०१)

अब क्रोध में भर सात्यकीने अन्य धन्वा धार के।
क्लेशित किया भरसक उसे दश तीक्ष्ण सायक मार के॥
लेकर अनेकों भल्ल रथ विध्वंस उससे कर दिया।
अत्यल्प जीवों का हयों-सा नाश उसने कर दिया॥

(१०२)

हो क्रुद्ध यम-सम सात्यकीने भल्ल को सन्धान के।
गांडीवधारी पार्थ-सम सत्वर शरासन तान के॥
मारा गरज कर शत्रु-रथ ईषा उसीसे काट दी।
रिपु पार्श्व-रक्षक सारथी को मारकर यम घाट दी॥

(१०३)

बलवीर अर्जुन शिष्य सोदित विरथ कृत को देख के।
कृप वीरवर यमराज सम ही सात्यकी को पेख के॥
भागा उसे निज रथ बिठा कुछ दूर पर संग्राम के।
ओझल हुआ युग लोचनों से सात्यकी बलधाम के॥

(१०४)

यह देख कौरव-वाहिनी सेना लगी फिर भागने।
क्लेशित सबों को कर दिया वर बाण-रूपी आगने॥
रण-रूप धर कुरुराजवर आकर लगा तब मारने।
ज्यों भालु-दल को वीर रावण हो लगा संहारने॥

(१०५)

कुरुराज के वरबाण से यों पाण्डुदल मरने लगे।
ज्यों शंभु भवलय काल हो संहार जन करने लगे॥
यों कर सके उसको न उउलंघन वहाँ पाण्डव सभी।
ज्यों मृत्यु मानव मरणधर्मा से नहीं टलती कभी॥

(१०६)

पहुंचा पुनः इस बीच कृत वह अन्य रथ आसीन हो।
लड़ने लगा वह पाण्डुवर से क्रोध में तल्लीन हो॥
तब वीरवर कौन्तेयने झट चार सायक कर लिया।
तत्काल ही रिपु-रथ-हयों को मार कर यमपुर दिया॥

(१०७)

षट् तीक्ष्ण भल्ल प्रहारसे कृत वीर बहु क्लेशित हुआ।
कृत सङ्ग ही वह भी वहाँ व्रण-पूर्ण अति खेदित हुआ॥
अब तो न कोई रह सका राजा युधिष्ठिर सामने।
यों कर दिया रण शेष जानो हा! विधाता बामने॥

(१०८)

नृप की प्रशंसा भूरि भूरि प्रसन्न हो करने लगे।
जयकार-रवसे सब दिशा भीमादि गण भरने लगे॥
हरि पार्थ के जयघोष से आकाश परिपूरित हुआ।
रण-वाद्य जय रव से रण स्थल पूर्ण ही गुंजित हुआ॥

(१०९)

हर्षित हुए पाञ्चाल सोमक आदि वीर महारथी।
प्रमुदित हुए सैनिक सदल राजा सहित रथ सारथी॥
सामोद वीर पदाति प्रियजन से गले मिलने लगे।
योंही सभी मिलकर परस्पर प्रेम में पगने लगे॥

(११०)

कुरुराज-दल में आज भी औदास्य ही औदास्य है।
ज्यों खो गया हो रत्न यों वे सब हृदय से हास्य हैं॥
सश्रम उपायों से सुलक्ष्य स्थान पर आता न जो।
सुख-अङ्क-सम पर्य्यङ्क पर भी शान्ति है पाता न सो॥

(१११)

शठता-सहित हठ ठानकर दुर्मन्त्रणा करता न जो।
सद्धर्म पथ तजकर कुपथ पर पैर निज धरता न जो॥
तो बन्धु से भी इस तरह अपमान वह पाता नहीं।
कर्त्तव्य पर सर्वस्व खोकर आज पछताता नहीं॥

(११२)

हे पाण्डुवर ! तुम धन्य हो अवतार हो तुम धर्म के।
तुम सत्य-पथ पर दृढ़ रहे हैं श्रेय जो सत्कर्म के॥
तुम हो अहिंसा के व्रती आग्रह तुम्हारा सत्य है।
इस हेतु जय संपन्नता होनी तुम्हारी तथ्य है॥

* इति तृतीय खण्ड *

* अथ *

॥ चतुर्थ खण्ड ॥

धर्मेश—शर-संघात से मद्रेश जब संहृत हुआ।
कुरुराज का दल केदली के पत्र-सम कंपित हुआ॥
शङ्कित हुए सब शूरगण वे मद्रदेशी आप से।
कपटी सुयोधन मौन था वह शल्य वध संताप से॥

(२)

तब पाण्डवों की ओर शङ्ख-ध्वनि श्रवण होने लगी।
कुरुवीर सेना चेतना आतङ्क से खोने लगी॥
रोने लगी कुरुराजवर की राज्यलक्ष्मी भाग को।
वह तो स्वयं जल राख होता जो लगाता आग को॥

(३)

रक्षित रथो शत सप्त राजा शल्य के रक्षार्थ जो।
लड़ने चले सब शत्रु से थे दक्ष प्रतिहिंसार्थ जो॥
क्रोधान्ध हो वे वीर रावण-सैन्य-सम बढ़ने लगे।
सौ सौ शलभ दीपक शिखा पर शीघ्रतर चढ़ने लगे॥

(४)

कहने लगा तत्काल कुरुवर मद्रदेशी वीर से।
देखो ! अनल की वृष्टि होती पाण्डवों के तीर से ॥
हैं रुष्ट वे सब इसलिए उस ओर मत जाओ अभी।
आई शिवा हरि सन्निकट से प्राण ले बोलो ! कभी ॥

(५)

सुनकर न सुनता है वही जो रण मदों में मस्त हो।
वह लौट सकता है नहीं जो वीर रण में व्यस्त हो ॥
वह प्राण पर है खेलता कर्तव्य रण संग्राम में।
बलधाम रिपु से भी न रखता भीतता हृद्धाम में ॥

(६)

सम्मुख चले धर्मेश के प्रतिशोध लेने के लिए।
वे म्लेच्छ मानो, प्राण के बलिदान देने के लिए ॥
थी गर्जनों में वीर के घनघोर-सम गंभीरता।
खोने लगी धरती समर-निर्भीकता-युत धीरता ॥

(७)

पाण्डव दलों में वे सदल जाकर लगे रण ठानने।
वे स-प्रयत्न सशक्ति धन्वा को लगे सब तानने ॥
नद-धार में तूफान उठता ज्यों सवेग कभी-कभी।
संग्राम-नद ले भीति साथ सशब्द लहराता अभी ॥

(८)

लगा गाण्डीव की टङ्कार अर्जुन आ वहाँ।
संसार में फैली भयङ्कर भीम भीति जहाँ तहाँ॥
डरने लगे सब शूर नन्दी-घोष के सुन घोष को।
डरते सभी सुन वन्य पशु ज्यों केसरी निर्घोष को॥

(६)

भीमादि अपनी गर्जना से गगन को भरने लगे।
पाञ्चाल सोमक आदि धन्वा को सुदृढ़ करने लगे॥
रक्षार्थ धर्माधार के सब ओर वे सब हो खड़े।
रिपु को लगे वे हेरने कर रक्त-युत लोचन कड़े॥

(१०)

उस काल ही चिल्ला उठे मद्रेश के अनुचर वहाँ।
राजा युधिष्ठिर भीम अर्जुन सात्यकी सब हैं कहाँ॥
वह द्रौपदी के पुत्र धृष्टद्युम्न आदि महारथी।
होता न है वह दृष्टिगोचर कृष्ण अर्जुन सारथी॥

(११)

देखो ! यहाँ वह आ रहा है शत्रु अपने आप से।
मारो उसे भगने न पाये क्रोध ज्वाला ताप से॥
प्रतिशोध लो मद्रेश का कर वृष्टि तीखे वाण की।
जी-जान से मारो मरो आशा न रक्खो प्राण की॥

(१२)

यह कह लगे भीमादिकों पर आयुधों को जोड़ने।
दृढ़तर शरासन तानकर उससे लगे शर छोड़ने॥
प्रलयान्त में क्रोधान्ध जलधर ज्यों बरसता वारि को।
करने लगे शर-संघ स्वामी-हीन त्यों रिपु-नारि को॥

(१३)

बजने लगे रणवाद्य बहुविधि साथ उसके रोष में।
आने लगे व्रण-युक्त साहसहीन नर भी जोश में॥
पाने लगे निःशंक हो शर-संघ अपने लक्ष्य को।
ज्यों हो झपटते पक्षियों के यूथ पा निज भक्ष्य को॥

(१४)

तत्काल बरसाने लगा अति क्रुद्ध अर्जुन आग को।
कर खाक वीरों को लगा वह पूर्ण करने याग को॥
टंकार कर गाण्डीव, उससे व्योम-पथ भरने लगा।
प्रतिपक्षियों के प्राण वह बहु शीघ्र ही हरने लगा॥

(१५)

दावानलों से दग्ध होती है यथा विपिनस्थली।
त्यों पार्थ शर के घात से मरने लगी सेना बली॥
यों भर गई कुछ ही क्षणों में रुण्ड-मुण्डों से धरा।
ज्यों नाश होता बाग बन्दर से समूल हरा भरा॥

(१६)

यों दुर्दशा जो पार्थ से प्रतिपक्षियों को की गई।
भरसक उन्हें संग्राम की जो शूर-शिक्षा दी गई॥
यह देख शकुनी ने कहा हो ग्लानि-वश सन्ताप से।
राजन्! उचित यह है नहीं जो आज होता आप से॥

(१७)

ली जा चुकी सर्वप्रथम सब से शपथ संग्राम में।
मिलकर सभी रिपु से लड़ें प्रण कर चुका हृद्धाम में॥
निज पक्षियों का नाश होता देखकर भी हो खड़े।
राजन्! न तेरे योग्य है अपधर्म हैं उसमें बड़े॥

(१८)

मद्रेश तेरे हित दिखाकर शक्ति-भर पुरुषार्थ को।
देखो! धराशायी हुआ रक्खा नहीं कुछ स्वार्थ को॥
वध हो रहा है आज उसके अनुचरों का सर्वथा।
तुम देखकर भी मौन हो क्या? है यही समुचित प्रथा॥

(१९)

रण-मध्य सैनिक शत्रु-सम्मुख क्रोधरत होता जभी।
वह शूर स्वामी का कथन भी टाल ही देता सभी॥
रहता हिताहित का न समुचित ज्ञान रण-रत वीर में।
निर्भीकता रहती सदा अतिरोष युत रण-धीर में॥

(२०)

समरज्ञ स्वामी को न उस पर ध्यान देना चाहिए।
हो रुष्ट उससे युद्ध में मत मौन लेना चाहिए॥
रक्षार्थ अपने दलबलों के दक्ष रहना चाहिए।
हो पक्ष मेरा नत नहीं इस मार्ग चलना चाहिए॥

(२१)

निज लोचनों से हानि अपनी देखना दुष्पाप है।
पुरुषार्थ रखकर शत्रुओं का कौन सहता ताप है॥
नीतिज्ञ अपने पक्ष का होने न देता ह्रास है।
तुम हो खड़े तेरे दलों का आह! होता नाश है॥

(२२)

कुरुराज! तुम से आज होता यह महान् अनर्थ है।
सहता न है दुर्वृत्ति रिपु की जो सदैव समर्थ है॥
इस हेतु अपनी शक्ति भर रक्षा करो उसकी अभी।
जो प्राण-अर्पण से तुम्हारा मान करते हैं सभी॥

(२३)

यह सुन सुयोधन ने बड़ी बलवीर सेना साथ ले।
सम्मुख किया प्रस्थान नाना आयुधों को हाथ ले॥
वह सिंह-नादों से मही को भीति दरसाता हुआ।
बढ़ता गया आगे भयङ्कर बाण बरसाता हुआ॥

(२४)

तबतक उधर पाण्डव दलों से मद्रदेशी वीर का।
तृण तुल्य ही होने लगा संहार सैनिक धीर का॥
ज्यों मत्त कुञ्जर पंकजों को क्रुद्ध हो संहारता।
त्यों वीर पाण्डव तीर से रिपु-वीर को है मारता॥

(२५)

पल में प्रलय होता त्रिलोचन हस्त से संसार का।
होने लगा त्यों अन्त सत्वर शत्रु-सैन्य अपार का॥
शतशत रथियों के मरण से क्षुण्ण नद बहने लगा।
रिपु-मुण्ड कूर्म समान उसमें भीतिप्रद दहने लगा॥

(२६)

कितने सिसकते गिन रहे हैं मृत्यु वेला की घड़ी।
है त्राटकी मुद्रा लगाये पास ही योगिनि खड़ी॥
सञ्छिन्न-भुज नर लोटते हैं वाण से पाकर व्यथा।
ज्यों वाण से संविद्ध पक्षी कष्ट पाता सर्वथा॥

(२७)

उस काल कौरववाहिनी भय-युक्त रव करती हुई।
पहुंची वहीं निज भार से भू को विकल करती हुई॥
कुरुराज उसके साथ अर्जुन से लगा लड़ने वहाँ।
मानो, महीको वाण-निकरों से लगा भरने वहाँ॥

(२८)

यह देख अर्जुन के युगल लोचन अरुणमय हो गये।
मानो, व्रणों पर व्रण पुनः जैसे अचानक हो गये॥
कर-दण्ड में गांडीव ले वे वीर रणमण्डित हुए।
फिर एक शर के घात से कुरुदेव-शर खण्डित हुए॥

(२९)

सन्ध्या समय जैसे पतन होता सुमन का वात से।
गिरने लगे कुरु-सैन्य अर्जुन के प्रखर शर-घात से॥
बलि जन्तु का बलिदान कर देते हविप ज्यों आग में।
नर-शीश को संछिन्न कर देने लगा रण-याग में॥

(३०)

भगवान् भास्कर ज्योति से तम-पुञ्ज होता दूर ज्यों।
भगने लगे अर्जुन-शरों की भीति से रिपु-शूर त्यों॥
आखेट करता है शिकारी ज्यों मृगों को घेर के।
त्यों पार्थ का शर त्रस्त रिपु को मारता है हेर के॥

(३१)

वन छोड़ता है भीत हो मृग-यूथ ज्यों मृगराज से।
वा राक्षसों ने ज्यों पलायन था किया सुरराज से॥
भगदड़ हुई कुरुवर-दलों में त्यों धनञ्जय-चाप से।
पाता न पापी फल शुभङ्कर घोरतम निज पाप से॥

(३२)

इस विश्व में हैं कार्य करते धर्म के प्रतिकूल जो।
जाते न अपने लक्ष्य पर पाते न फल अनुकूल सो॥
जिस काम में होती निराशा मन उधर जाता नहीं।
आता नहीं कुछ ध्यान में शुभ ज्ञान वह पाता नहीं॥

(३३)

कुरुभूप के सब शूर में भी बात भय से थी यही।
निज हार होने से न उनमें धीरता कुछ भी रही॥
साहस न होता था उन्हें अब सैन्य एकत्रित करें।
सम्मुख प्रबल प्रतिपक्षियों के शस्त्र निःशंकित धरें॥

(३४)

जो थे प्रधान प्रधान वे सब स्वर्गरमणी-लीन थे।
जिनकी जरा भी आश थी वे दिव्य लोक अधीन थे॥
कर्णादि जिसकी वीरता सुरलोक में भी ख्यात थी।
संहृत हुआ वह रत्न जिससे जीत की कुछ बात थी॥

(३५)

जो भी अभी तक थे बचे व्रण-युक्त थे रिपुवाण से।
वे भागने पर ही तुले थे सर्वथा जी जान से॥
अब कौन रण-उद्योग में सहयोग दे रण ठानता
कुरुराजवर की बात भी था कौन जो कुछ मानता॥

(३६)

मंझधार में ज्यों डगमगाती नाव पारावार के।
होने लगा कंपित सुयोधन मध्य में रण-धार के॥
सब ओर वह्नि ज्वाल से होता हरिण ज्यों भीत है।
करने लगा कुरुराज यों कायर जनों की रीत है॥

(३७)

चञ्चल दृगों से भागने का पथ लगा वह हेरने।
वह कब ? निकल पाता कहो ? जिसको लगा हरि घेरने॥
सब ओर अर्जुन घोर गर्जन से लगा शर मारने।
वह क्रुद्ध यम-सम शत्रुओं का दल लगा संहारने॥

(३८)

फिर भी पलायन का प्रयत्न स-शक्ति वह करने लगा।
जम्बुक सदल गज के निकट से पुरः पद धरने लगा॥
है घेर लेता जन्तुओं को जिस तरह क्रोधित करी।
त्यों घेर रथ से लगे अरिवृन्द को रोषित हरी॥

(३९)

यह देख सृञ्जय वीर साथी संघ से कहने लगे।
दुर्वृत्त की इस नीचता पर यों वहां हँसने लगे॥
जो खोदता खड्ढा स्वयं गिरता उसीमें आ वही।
विष बीज बोता जो उसी में नष्ट हो जाता वही॥

(४०)

पाता न है वह त्राण निज गृह में लगाता आग जो।
दुख भोगता वह ठानता निज बन्धु से रण-याग जो॥
जो स्वार्थ-हित दुष्कर्म पथ पर रत रहा करता सदा।
होता न सुख संपन्न जो पग पंक में धरता सदा॥

(४१)

समझें सुयोधन आज निज कर्तव्य के परिणाम को।
नर रुण्ड मुण्डों से भरा देखें अभी संग्राम को॥
जिसका प्रबल बल था वही झखता असक्त पड़ा पड़ा।
देखें मरा निज पुत्र को अब वह सजीव खड़ा खड़ा॥

(४२)

था वश किया जिसने धरा के रत्न-सम रण वीर को।
पाला जिन्हें बहु स्वार्थ से गुरु द्रोण भीष्म सुवीर को॥
करके भरोसा उन सबों का अग्रसर रण में हुआ।
वह देखलें मृत मित्र को जो जो सहायक था हुआ॥

(४३)

वह आततायी आज अर्जुन का पराक्रम जान ले।
होता कुकर्मों से कुफल, कुरुराज अब भी मान ले॥
वह भीम का प्रण याद कर कर्तव्य पर रोयें अभी।
छल युक्त अपनी युक्ति से निश्चिन्त हो सोयें कभी॥

(४४)

जो जो किया अपकार बारम्बार धर्माधार का।
फल ध्यान-पथ लाया नहीं दुर्नीति नीति-विचार का॥
आश्चर्य क्या! निजको अभी दुख में निमग्न निहारता।
जलता वही जो आग पर सोचे बिना पग धारता॥

(४५)

धृतराष्ट्र अब अच्छी तरह देखें कुपुत्रों की दशा।
जो वायु-नन्दन भीम से पाई समर में दुर्दशा॥
संकष्ट भोगें पाण्डवों के हो अधीन वही अभी।
जो भंग करते अङ्ग को वे सुख भला पाते कभी॥

(४६)

सारी मही के वीर से उसने विजय पाई नहीं।
क्या! क्या! किया उद्योग भी पर शान्ति कुछ आई नहीं॥
कुरुराज भी जब गिर पड़ेगा भीम वज्राघात से।
धृतराष्ट्र तब व्याकुल गिरेगा पुत्र-वध-संवाद से॥

(४७)

अब सत्य समझेगा विदुर की सारयुत सारी कथा।
जी भर करेगा ताप जो गोविन्द को दी थी व्यथा॥
वह द्रौपदी को याद कर संमग्न होगा शोक में।
सौ पुत्र मरने से दिखा सकता न मुंह इस लोक में॥

(४८)

अब जानता होगा समर के शौर्य्य हैं जो पार्थ में।
है श्रेष्ठ सुर-नन्दन धनुर्धर वीर के पुरुषार्थ में॥
गाण्डीव की टंकार कितनी भीति देती वीर को।
साहस हुआ सम्मुख न होने का किसी रणधीर को॥

(४६)

धृतराष्ट्र परिचर्य्यार्थ पाण्डव के रहे अब दास हो।
घुलकर मरे घुण-युक्त तरु-सम शोक-मग्न उदास हो॥
भुजदण्ड में जाने धनञ्जय के महा वीरत्व को।
शोकित करें स्वीकार पाण्डव के पराधीनत्व को॥

(५०)

परिचय मिलेगा भीम के रण-शौर्य्य धैर्य अपार का।
पाता न कोई पार है जिस भाँति पारावार का॥
उसको गदा की शक्ति को धृतराष्ट्र अवलोकन करे।
दिन दिन सहे दुख और लोचन अश्रु को मोचन करे॥

(५१)

हैं धर्मपति के पुत्र धर्मोपासना में लीन जो।
गाण्डीवधारी वीर अर्जुन है समर तल्लीन जो॥
जिस ओर भीमादिक बली संग्राम करते धर्म से।
उसकी विजय होती जिसे सम्बन्ध हो शुभ कर्म से॥

(५२)

ओर लड़ते द्रौपदी-नन्दन प्रतापी धीर हैं।
द्रौपद धनुर्धर सात्यकी सब जो रथी में वीर हैं॥
राजा विराटादिक बली सप्रण सहायक हैं जिन्हें।
वे जीत लेंगे काल से भी धर्म का बल है जिन्हें॥

(५३)

हित-हेतु जिनके घर लिया है मानवोयाकार को।
नट-सम नचाता नित्य जो जड़ जीवयुत संसार को॥
साक्षात् त्रिभुवन-नाथ हैं रथवान् जिनके पक्ष में।
होंगे सफल वे शत्रु की हो सैन्य संख्या लक्ष में॥

(५४)

पाता न फल यह मानता हरि के कथन धृतराष्ट्र जो।
बहता नहीं रण-रक्त-नद मचता न युद्ध विराट् जो॥
होती न उसको यह दशा वह ज़िद धर लेता न जो।
परिणाम यह होता नहीं दुर्य्योग कर देता न जो॥

(५५)

धिक्कारते सृञ्जय सभी रिपु को लगे संहारने।
पाते जहाँ जिसको वही झटपट लगे सब मारने॥
कुरुदल-लता के तुल्य ही इन वीर से कम्पित हुए।
जैसे अजा के यथ वृक को देख हो शंकित हुए॥

(५६)

तत्काल ही रथ-सैन्य को अर्जुन लगा ललकारने।
सौसौ शरों का लक्ष्य कर रिपु को लगा दुत्कारने॥
कहने लगा रेरे अधम! हो पापियों के पक्ष में।
सीखो समर-शिक्षा हमारे वाण के इस लक्ष में॥

(५७)

आकर लगे नकुलादि भी शर को वहीं सब जोड़ने।
परिणत पलायन में विपक्षी को लगे सब मोड़ने॥
जो मन्त्रणा शकुनी सुयोधन को सदा देता रहा।
उनके निकट आ सात्यकी ने त्राण कर लेता कहा॥

(५८)

नरप्रेत! तू कुरुराज को देता न जो दुर्मन्त्रणा।
निज बन्धुओं से की न जाती युद्ध विषयक यन्त्रणा॥
संसार के नर-शूर का संहार हो जाता नहीं।
बलधाम दुर्योधन कभी परिणाम यह पाता कहीं?॥

(५९)

पैशाचिकी आचार धर्माधार ने जो जो किया।
बनवास देकर पाण्डवों को कष्ट तुमने जो दिया॥
अबतक तुझे उस पाप का प्रतिफल हुआ कुछ भी नहीं।
अपकर्मियों का रे छली! उद्धार भी होता कहीं?॥

(६०)

निस्तार होगा अब न तेरा तीक्ष्णतर नाराच से।
तू नष्ट होगा जिस तरह घट फूटता है काच से॥
तू खोज ले रक्षार्थ तेरे वीर है को को खड़ा।
होगी दशा तेरी वही जो सामने वह है पड़ा॥

(६१)

आजन्म तू प्रियबन्धु में कलहाग्नि भड़काता रहा।
दुर्जन सुयोधन ओर से विषबीज बरसाता रहा॥
इन पाण्डवों के राज्य हरने में दिया सहयोग जो।
रे दुष्ट! प्रायश्चित्त कर पैदा किया दुर्योग जो॥

(६२)

अबतक बचा तू यह समर के दृश्य दर्शन के लिये।
कुरुराज की अन्तिम दशा पर अश्रु बरसन के लिए॥
निज प्रियजनों को रे कपटरत! एकबार निहार ले।
दुष्पाप का दुष्फल अरे! सब भाँति आज विचार ले॥

(६३)

अब काल तेरे भाल के उस भाग पर है घूमता।
ज्यों क्षुद्र वन्योंको निरख कर मत्त गज है झूमता॥
वह देखता है मृत्यु का अन्तिम समय तेरा अभी।
चलने न देगो धर्तता दुष्कर्मता तेरी कभी?॥

(६४)

यों कह लगा उसको तुरत तीखे शरों से दागने।
होली मचाई रक्त रंगों से समर में फागने॥
सम्मुख ठहरता सात्यकी के दुष्ट एक मुहूर्त जो।
बचने न पाता वह वहाँ पर था बहुत ही धूर्त्त जो॥

(६५)

यह देख दुर्य्योधन वहाँ दुख द्वन्द में तल्लीन हो।
अबतक खड़ा जो देखता था मौन मुद्रासीन हो॥
कहने लगा निज सारथी से क्रोध में आकर वहाँ।
कुछ दूर पीछे ले चलो रथ शूर सैन्यों के वहाँ॥

(६६)

मैं पृष्ठ भागों में रहूंगा सैन्य के जब सर्वथा।
रक्षा करूंगा सब तरह अस्तित्व है जबतक तथा॥
तब पाण्डवों का वाण बरसन हो न पायेगा कभी।
निज शत्रु के संत्यक्त शर खण्डन करूंगा मैं सभी॥

(६७)

पाण्डव दलों की बाढ़ आती जो अभी हद तोड़ती।
जो भूर-सम भयभीत सेना को सशीघ्र ममोड़ती॥
वह रुक रहेगी वीरगति की शीघ्रता मम वाण से।
धोना पड़ेगा हाथ सैन्यों को न अपने प्राण से॥

(६८)

वे लौट आयेंगी पुनः यह देख मेरी वीरता।
संग्राम करने के लिये रखकर हृदय में धीरता॥
गंभीरता युत गर्जनों से मेघ ज्यों नभ को भरे।
वह वाण बरसाने लगा ज्यों बुन्द बादल से झड़े॥

(६९)

यह वीरतायुत वाक्य सुनकर सुतने कुरुवीर के।
पीछे किया रथ पृष्ठ भागों से सभी रणधीर के॥
रणक्षेत्र में गज अश्व रथ का नाश था तबतक हुआ।
जैसे त्रिपुर के सैन्य का संहार शिव-कर से हुआ॥

(७०)

फिर थे अनेक सहस्र पैदल प्राण अर्पण कर रहे।
उत्साह युत आकर पुनः कुरुराज हित थे मर रहे॥
संयोग वश उसपर चढ़ाई पाण्डवोंने की न थी।
सम्मुख समर के वीर भटने धीरता खोदी न थी॥

(७१)

वे प्राण प्रण से वाण अर्जुन के सभी सहने लगे।
लेकर अनेकायुध धनञ्जय से समर करने लगे॥
रिपु-वाण से व्रण युक्त पीछे पैर वे धरते न थे।
थे वीर वे रणधीर कायर की तरह मरते न थे॥

(७२)

प्रतिपक्षियों से वायुनन्दन ने कहा आता वहां।
रे पाप-रत अनुयायियो ! तू भाग कर जाता कहां॥
यह कह लगा रथ-बैठकी में बैठ शर को छोड़ने।
झट पट लगा रिपु-ब्यूह वाण समूह से वह तोड़ने॥

(७३)

सेनेशने जैसे असुर-दल से किया रण क्रोध में।
तत्पर रहा त्यों भीम अपने शत्रुओं के शोध में॥
कर विद्ध वाणों से उसे अरि-शिर लगा वह काटने।
पल मारते रिपु-रक्त से रण को लगा वह पाटने॥

(७४)

कुरुवर-दलों ने भीम के निःसीम बल को देख के।
साहस किया कुछ कम न उसको काल-सम भी लेख के॥
कर संगठन ज्यों निशिचरों ने राम से रण था किया।
त्यों बाँधने का भीम को रिपुवृन्द ने प्रण था किया॥

(७५)

सह सह शरों की मार वह अविराम रण करता हुआ।
जाने लगा रिपु-रथ निकट वह पुरः पग धरता हुआ॥
कहने लगा मारो नहीं बस शीघ्रता से बांध लो।
सब ओर से हो घेर कर इस मत्त गज को साध लो॥

(७६)

यह कह विपक्षी वृन्द जब तट भीम के आने लगे।
सन्धान कर सौ सौ शरों का घात पहुंचाने लगे॥
कुछ काल दोनों शत्रुओं में घोर रण होने लगे।
गिरने लगे रण-भूमि में भट सैन्य-धृति खोने लगे॥

(७७)

तब वायु-नन्दन शत्रुओं की ढीढता को हेर के।
है काल तेरे शीश पर कहने लगा मुंह फेर के॥
है मोह प्राणों का जिसे वह दूर हो संग्राम के॥
मुंह में न घुस आकर अभी इस केहरी बलधाम के।

(७८)

अच्छा तुम्हें शिक्षा समर को पूर्ण होनी चाहिए॥
रे पामरो! तव रक्त से तलवार धोनी चाहिए॥
अन्यायियों को दण्ड देना वीर का सद्धर्म है।
फल-भोग ले सब भांति तूने जो किया दुष्कर्म है॥

(७९)

धिक्कारता दुर्वाक्य से धर रूप यम-आकार के।
कूदा तुरत कौन्तेयने उस भाग से रथ द्वार के॥
निज गर्जनों से रिपुजनों को त्रास वह देता हुआ।
परिणत विपक्षी-भक्ष्य में झटपट गदा लेता हुआ॥

(८०)

कहता हुआ रे कुलकलंको ? शूर-सम्मुख हो अभी।
आखेट रत हरिसे कुशल रहता कभी रे कह ? कभी॥
सुर वज्र से होने लगा था निशिचरों का नाश ज्यों।
करने लगा मरकर गदा से शत्रु-स्वर्ग-निवास त्यों॥

(८१)

कटने लगे केवल किसीके शस्त्र युत युग हाथ ही।
मरने लगे कुरुवीर अपने बान्धवों के साथ ही॥
ज्यों छिन्न था करने लगा हनुमान असुरोद्यान को।
हरने लगा कुन्ती-तनय त्यों शीघ्र रिपु के प्राण को॥

(८२)

ज्यों रामने चौदह सहस्रों का किया संहार था।
त्यों भीम वज्राघात से विध्वस्त शत्रु अपार था॥
वर्षागमन से ज्यों नदी बहती भयद जलपूर्ण हो।
अरि-संघ रण भरने लगे भैमी गदा से चूर्ण हो॥

(८३)

रण-रक्त पारावार बह निकला भयंकर भीति से।
नर-रुण्ड मुण्डों से भरी समरस्थली रण-नीति से॥
वेलावलोकन कर रहा व्रण-युक्त प्राणोत्सर्ग का।
कोई खड़ा ही देखता है नाश अपने वर्ग का॥

(८४)

कुरु सैन्य ने यह भीम का अनुपम पराक्रम देख के।
निश्चय पलायन का किया उसको हरी-सम पेख के॥
बध तो अगण्य हुए बचे कुछ ही गदा-संघात-से।
वे भी भगे भय युक्त होकर बात के सङ्घात से॥

(८५)

उस नीच दुर्योधन बली को अब न कुछ भाता रहा।
इस काल निज कर्त्तव्य का निश्चय न कर पाता रहा॥
संग्राम की वह योजना करने लगा रख धीरता।
रिपु-बल सहा जाता नहीं हो पूर्ण जिसमें वीरता॥

(८६)

देखा, हमारी सुभट सेना जा रही कुछ दूर में।
कहने लगा साहस न होता कम कभी है शूर में॥
रे वीर ! तुम सब क्षत्रियों के वंश में अवतंस है।
फिर क्यों ? तुम्हारी वीरता का इस तरह विध्वंस है॥

(८७)

क्या ? लाभ होगा भागने से त्राण पाओगे नहीं।
रक्षा तुम्हारी विश्व में रिपु-बाण से होगी नहीं॥
पाण्डव न छोड़ेगा तुम्हे डरपोक होने पर कभी।
अपराध तो है कर लिया फिर भागते हो क्यों ? अभी॥

(८८)

थोड़ी बची सेना अभी है शत्रुओं के पास में।
वेभी सभी व्रण युक्त हैं, है पक्ष उसका ह्रास में॥
रे देख! गिरिधर की अभी है दुर्दशा कितनी हुई।
प्रत्यङ्ग अर्जुन के अरे! लख घाव जितनी है हुई॥

(८९)

रे! देख धर्मज अङ्ग से निकली रुधिर की बुन्द यों।
प्रातःदिवाकर ज्योति से उत्फुल्ल हो अरविन्द ज्यों॥
सामर्थ्य है उसमें न अब जो सामना तुझसे करे।
घण-युक्त तरु-सम है खड़ा कुछ धैर्य्य वह मन में धरे॥

(९०)

है भीम कितना श्रान्त अब उत्साह है उसमें नहीं।
ज्यों बाघ हो संविद्ध वाणोंसे फिरे बन में कहीं॥
वह देह दिखलाकर सबों को ही कँपाता है अभी।
हैं लुप्त सारे शौर्य्य उसके ध्वस्त हैं साहस सभी॥

(९१)

रे! लख उधर सहदेव नकुलों की दशा जो जो हुई।
हेमन्त में हिमकर किरण से निहत नलनी ज्यों हुई॥
हैं सात्यकी द्रौपद सभी भी इस अवस्था में पड़े।
फिर क्यों? पलायन कर रहा है कर समर होकर खड़े॥

(६२)

जब मृत्यु कायर शूरवीर समस्त जन को मारती।
जड़ जन्तु कीट-समूह को पाकर समय संहारती॥
तब मृत्यु-भय से भागना यह कायरों का कर्म है।
संग्राम-रत बलवान क्षत्रिय का समर ही धर्म है॥

(६३)

होगी समर में मृत्यु तो सद्गति मिलेगी स्वर्ग में।
जीवित रहोगे कीर्ति होगी बान्धवों के वर्ग में॥
इस भांति दोनों हाथ में तुझको अमर फल प्राप्त है।
फिर भूलता है क्यों? उसे जो क्षत्रियों का आप्त है॥

(६४)

करना वरण ही मृत्यु को संग्राम द्वारा धर्म है।
रे सैनिको? यह क्षत्रियों का शास्त्र सम्मत कर्म है॥
आओ इधर प्रतिपक्षियों के सामने आकर लड़ो।
मारो मरो निर्भीक हो रिपु-सैन्य पर जाकर चढ़ो॥

(६५)

जिस जाति में जातीयता का ध्यान रहता है नहीं।
अपना सनातन धर्म का कुछ मान रहता है नहीं॥
उस जाति का होता पतन निर्मूल होती है वही।
परतन्त्रता की बेड़ियों का कष्ट सहती है वही॥

(९६)

सुनके सुयोधन बात को कुरुदल पुनः प्रस्तुत हुआ।
हार्दिक प्रतिज्ञा कर सभी रण कार्य्य में उद्यत हुआ॥
करने लगा कुरुराज का जयकार वह गंभीर से।
बढ़ने लगा सम्मुख विपक्षी के बड़े ही धीर से॥

(९७)

पाण्डव प्रथम ही व्यूह रचकर शस्त्र सज्जित थे खड़े।
निज शत्रुओं के समर में थे दक्ष कार्तिक-से अड़े॥
आरातियों के आगमन को देख रिष में लीन हो।
बढ़ने लगे वे सिंह सम कर घोष-रथ आसीन हो॥

(९८)

है विश्व में विख्यात जो गांडीव धन्वा पार्थ का।
करने लगा टङ्कार से बलहीन रिपु-पुरुषार्थ का॥
गोविन्द नन्दी घोष से आतंक फैलाने लगे।
प्रतिपक्षियों का धैर्य्य हर तृण तुल्य कँपवाने लगे॥

(९९)

यम-दण्ड धारी भीम सिंह-समान रव करने लगा।
भरने लगा वह स्वर्ग-पथ रिपु-सन्निकट बढ़ने लगा॥
जयकार धर्मा धार का अति गर्व से होने लगा।
रोने लगी रिपु-नारि सहसा धैर्य्य अरि खोने लगा॥

(१००)

उस काल म्लेच्छों का अधीश्वर शाल्व था बलवान जो।
वह था सुयोधन का सहायक था समर-विद्वान् जो॥
वह पर्वताकृति युक्त ऐरावत उपर आसीन था।
करने लगा रण-पाण्डवों से जो अतीव प्रवीन था॥

(१०१)

वह वीर छाती तान शर सन्धान यों करने लगा।
ज्यों राम रण-रत शूर रावण सब दिशा भरने लगा॥
ज्यों नष्ट करता सिंह क्रोधोन्मत्त वन्य समूह को।
करने लगा त्यों छिन्न वह म्लेच्छेश पाण्डव व्यूह को॥

(१०२)

शर छोड़ने यमलोक रिपु को भेजने में वीर को।
देरी न लगती थी जरा भी समर पण्डित धीर को॥
कब? वाण छूटा देख यह पाता न है रिपु हाथ से।
खण्डन न होता है विपक्षी वाण वहका पार्थ से॥

(१०३)

मानव-दलों का तोप सम्मुख त्यों समूल विनाश हो।
ज्यों अग्नियों से दग्ध होकर राख बन की घास हो॥
होने लगी रण की सफाई शाल्व-शर-सन्धान में।
गिरने लगे परि पक्क फल-सम शूर रण मैदान में॥

(१०४)

रिपु-सायकों को खण्ड करता म्लेच्छ का अधिराज यों।
दो टूक करता पंकजों के नाल को गजराज ज्यों॥
जंघा कलाई शत्रु की क्रीड़ार्थ उसने काट दी।
रण-रक्त से रण-प्राङ्गणों को एक पल में पाट दी॥

(१०५)

करिवर अनेक सहस्र रिपुओं को लगा संहारने।
निज शुण्ड से भुज दण्ड रिपु के धर लगा वह मारने॥
पग से नरों को है कुचलता भक्ष्य अपना जान के।
लेता दबा दाँतों तले वह स्तम्भ नर को मान के॥

(१०६)

था शाल्व का गज एक तद्पि अनेक रिपु थे देखते।
जाती जहाँ तक दृष्टि थी सर्वत्र गज को पेखते॥
करि गर्जनों से तर्जनों को सैन्य में देता हुआ।
रण में लगा वह घूमने नर-ग्रास को लेता हुआ॥

(१०७)

गजराज के संहार में होता विफल उद्योग था।
चिन्तित हुए सब शूर यह कैसा महा दुर्योग था॥
भीमादि के रहते हुए ही नाश करता सैन्य को।
वे पृष्ठ मुख होने लगे देखो? दिखाकर दैन्य को॥

(१०८)

अति दूर से भी देखकर रिपु-शूर भय पाने लगा।
वह दीनता वश धीरता को छोड़ घबराने लगा॥
शोमादि सृञ्जय भी सभी भय से लगे थे भागने।
विचलित किया बलवीर को गजराज रूपी आगने॥

(१०९)

इस भांति पाण्डव ब्यूह को विध्वस्त उसने कर दिया।
इस लोक में परलोक में भी भीति रव से भर दिया॥
जैसे सुरेन्द्र द्विपेन्द्र ने था नाश राक्षस का किया।
गजराजने त्यों अरि दलों के प्राण पल में हर लिया॥

(११०)

जिस भांति आंधी वेग से तरु-संघ होते नष्ट हैं।
यमराज-सम करिराज से त्यों-शत्रु-दल संभ्रष्ट हैं॥
सम्मुख न कोई रख सके बलवीर अपनी धीरता।
जाती रही गांडीव धारी पार्थ की भी वीरता॥

(१११)

यह देखकर सेनेश धृष्टद्युम्न वीर कुमार ने।
उससे कहा अति क्रोध में आकर उसी के सामने॥
रे म्लेच्छ ? तेरे प्राण का संहार अब होगा यहीं।
त्रैलोक्य में तू देखले ? रक्षक अभी होगा कहीं॥

(११२)

गजराज जिसके शौर्य से निज को अमर है मानता।
उसकी खबर लेता अभी वह वीर जिसको जानता॥
नर-कुल कलंक? अरे? तुम्हारा शीघ्र करता नाश हूं।
रे दुष्ट! तेरे खून का प्यासा अभी मैं पास हूं॥

(११३)

कुरुराज के अनुयायियों का नाश है कैसा हुआ।
अपने दृगों से देख! रे खल! कष्ट है जैसा हुआ॥
कर्णादिकों के शीश पर कुक्कुर भयद रोते अभी।
रे देख! जयद्रथ वीर आदिक किस तरह सोते सभी॥

(११४)

होगी दशा तेरी वही जो पाप है तूने किया।
पापी जनों के मार्ग पर जो पाद है तूने दिया॥
अब शीघ्र प्रायश्चित्त कर अपने किये इस पाप का।
फल भोगले कुरुराज भी मृत मित्र के संताप का॥

(११५)

यह कह कथा वह वीर आयुध तीक्ष्ण कर लेता हुआ।
उसको उसीसे विद्धकर कुछ क्लेश वह देता हुआ॥
आकर पुनः उसके निकट गज-गति लगा अवरोधने।
निज पक्ष के संहार का झटपट लगा प्रतिशोधने॥

(११६)

तब शाल्व ने स-क्रोध उसके वाण का खण्डन किया।
लेकर पुनः शर दूसरा उससे उसे पीड़न दिया॥
उसने किया अवरुद्ध आगे पैर धरने से उसे।
शर जाल रच रवि-सम छिपाया शीघ्र ही उसमें उसे॥

(११७)

कहने लगा कर वाण-सम्मुख शत्रु के करता हुआ।
मृग शत्रु सम वह शाल्वरव से व्योम को भरता हुआ॥
रे रे द्रुपद-कुमार! अब निस्तार है तेरा नहीं।
इस वाण से इस लोक में उद्धार है तेरा कहीं॥

(११८)

रे बोल! अब अवलोक रक्षक कौन है तेरा यहां।
भीमादि अर्जुन हरि हमारी दृष्टि में आता कहाँ॥
वध के लिए इस यज्ञ में आगे तुझे किसने किया।
वह है प्रशंसापात्र सम्मुख भक्ष्य है जिसने दिया॥

(११६)

यह कह उसीकी ओर कुञ्जर को सवेग चढ़ा दिया।
नाराच सर्प समान धन्वा पर सवेग चढ़ा लिया॥
सब ओर अपने वाण की बौछार वह करने लगा।
मानो स्वयं आ काल रिपुके प्राण हो हरने लगा॥

(१२०)

भरने लगी रण भूमि प्राङ्गण साफ वह करने लगा।
आकाश-पथ की ओर से अति तीक्ष्ण शर झरने लगा॥
मरने लगे सैनिक सदल बल वीरगण खोने लगे।
खाण्डव दहन-समकाल पक्षी दग्ध ज्यों होने लगे॥

(१२१)

रोने लगी सारी दिशा धोने लगी भू पाप को।
क्लेशित हुए सब शूर पाकर शत्रु-शर के ताप को॥
यों सम्मुखस्थित सैन्य को म्लेच्छेश ने संहार के।
गज को बढ़ा आगे लगा वह गर्जने शर धार के॥

(१२२)

ज्यों शस्य से सम्पन्न क्षेत्र भ्रष्ट हो पशुराज से।
पाण्डव दलों की दुर्दशा त्यों हो गई गजराज से॥
सेनेश धृष्टद्युम्न का मन में विनाश विचार के।
झटपट निकटवर्ती हुआ सम्मुख शरासन धार के॥

(१२३)

अब शाल्व नाना शस्त्र बरसन से उसे भरने लगा।
वह अग्रसर करि राज को उसके निकट करने लगा॥
जब शाल्व हाथी शुण्ड से रिपु-रथ लगा धरने वहां।
पाण्डव दलों के शूर तब यह लख लगा डरने वहां॥

(१२४)

पर वीर द्रौपद धीर हो सम्मुख लगा शर जोड़ने।
गज शीश को वह तीन वाणों से लगा झट फोड़ने॥
ज्यों तोड़ने कपि दुर्ग लङ्का का लगा पुरुषार्थ से।
दिखला दिया निज शौर्य उसने धैर्य्य रख बढ़ पार्थ से॥

(१२५)

ज्यों वृष्टि होती पर्वतों पर पुष्प की तरुराज से।
आदेश पा बरसन हुआ जल क्रुद्ध ज्यों सुरराज से॥
झरने लगा त्यों शस्त्र झरना शीघ्र हाथी-शुण्ड पर।
जैसे शिकारी मारता है बाण सूकर झुण्ड पर॥

(१२६)

गज आक पुष्पों के प्रहारों से विकल होता न ज्यों।
आघात वीर द्विपेन्द्र का नाराच से होता न त्यों॥
पर्वत-शिला स्वस्थान से वर वायु से हरता न ज्यों।
टस-मस हुआ गज मत्त सायक संघ से कुछ भी न त्यों॥

(१२७)

क्षोभित हुआ यों देख यह द्रौपद स्वयं कर्तव्य से।
शिक्षित न हो अति मूर्ख ज्यों सुरराज गुरु वक्तव्य से॥
कूदा तुरत लेकर गदा वह सँभल कर रथ द्वार से।
क्लेशित किया गजराज को उसके कठोर प्रहार से॥

(१२८)

भीमादि आये दौड़ चट यों देख उसकी दुर्दशा।
करने लगे शर विद्ध बाणों से सभी गज की दशा॥
गजवीर बज्र शरीर में होने लगे लय बाण यों।
हरि के विराट स्वरूप में नर लीन होते भान ज्यों॥

(१२९)

जम्बुक दलों से सिंह का होता न है अवघात ज्यों।
गिरिराज का करता न कुछ वा वायु वेग विघात ज्यों॥
त्यों मत्त कुञ्जर का हुआ कुछ भी न बाण-समूह से।
पाण्डव परास्त न कर सके संग्राम नैतिक ऊह से॥

(१३०)

यह देख सृञ्जय सोमकादिक भीतता पाने लगे।
करने लगे आश्चर्य वे इस ओर वे आने लगे॥
ज्यों देख नकुलों का पराक्रम सर्प होता क्षीण है।
गजराज से पाण्डव-दलों का त्यों हुआ बल हीन है॥

(१३१)

म्लेच्छाधिपति के हस्ति का यह आक्रमण भीषण हुआ।
बलवान् भीमादिक सबों का कष्टमय जीवन हुआ॥
इस काल से तत्काल सब जाने लगे मुंह फेर के।
जाते निकट कोई न विस्तृत मृत्यु-मुख को हेर के॥

(१३२)

अन्धेर अब होने लगा खोने लगे सब वाण को।
सोने लगे सौ सौ सुभट तजने लगे पथ ज्ञान को॥
बलवान अपने मान का कुछ ध्यान रख पाया नहीं।
दुस्तर विपद् व्याकुल नरों का गर्व रह पाया कहीं॥

(१३३)

रण से विमुख-रत शत्रुओं पर शल्य शर तजने लगा।
वह रण-रसा को गर्जनों से सर्वथा सजने लगा॥
हर प्राण लेते ज्यों शिकारी हेर हेर बटेर के।
त्यों स्वर्ग-पथ भरने लगा वह मार रिपु को घेर के॥

(१३४)

कुछ देर में गज-आक्रमण से नाश नर का यों हुआ।
संहार मानव पाँव तल से चीटियों का ज्यों हुआ॥
आगे हुआ यह देख द्रौपद शत्रु शौर्य्य वितान को।
विध्वंस वह करने चला रिपु के विशाल विधान को॥

(१३५)

प्रण कर पुनः सब वीर लौटे आत्म प्राण त्याग का।
फल देखने सम्मुख चले वे शूर अपने भाग का॥
निज शक्ति पर विश्वास रख धर धैर्य्य वे बढ़ने लगे।
म्लेच्छेश को कर लक्ष्य शर का शत्रु पर चढ़ने लगे॥

(१३६)

प्रत्यङ्ग गज के वीधने वे वाण निकटों से लगे।
सायक सहस्त्र सहस्त्र करि मर्मस्थ में घुसने लगे॥
झरने लगा शोणित अधः शर विद्ध गज के गात से।
अब कांपने वह जर्जरित होकर लगा शर घात से॥

(१३७)

वह बज्र वाणों से व्यथित गंभीर गर्जन रत हुआ।
कर में उठा सेनेश का रथ-ध्वंस में परिणत हुआ॥
कर चूर्ण उसने धूल तुल्य किया उसे रण रोष में।
विचलित पुनः रिपु को किया आत्मीय भीषण घोष में॥

(१३८)

यमदण्ड ले सम्मुख चला द्रौपद तभी उस काल के।
ललकार कर मारा उपट उसने तुरत गज भाल के॥
वरवज्र से खा घात कुम्भस्थल उसी का फट गया।
तब सात्यकी शर से उसी क्षण शाल्व का शिर कट गया॥

(१३९)

मदमत्त ऐरावत सहित वह शाल्व भू-शायी हुआ।
स्वर्गीय रमणी सुन्दरी के भोग का भागी हुआ॥
कौरव कुमुद-समान पाण्डव-सूर्य्य से हतप्रभ हुए।
लोलुप स्वाती बुन्द के चातक निराशा-रत हुए॥

(१४०)

हरि पार्थ दोनों के विजय ध्वनि शंख से होने लगी।
सुनकर विपुल आराति-सेना धीरता खोने लगी॥
भीमादि अपने शंख से जय घोष यों करने लगे।
सुन हरि-घनाघन भूमि को ज्यों भीति से भरने लगे॥

(१४१)

जय-नाद कर सृञ्जय सभी आनन्द-नद में लीन हो।
करने लगे वे नृत्य जिससे शत्रु शौर्य्य विलीन हो॥
शौमक सभी सामोद साथी से गले मिलने लगे।
पाण्डव-कमल यों रण-सरोवर में समुद खिलने लगे॥

(१४२)

हैं शोक-सागर-मग्न कौरव रत्न ज्यों हो खो दिया।
सुखभाग वह होता न है विष बीज जिसने बो लिया॥
परिणाम में करता वही कर्तव्य पर सन्ताप है।
पाता न शान्ति सुवृक्ष-फल सहता न शत्रु-प्रताप है॥

(१४३)

वह अन्त में विध्वंस होता झेलता है कष्ट को।
मिलता पलायन पथ नहीं कर्त्तव्य गति से भ्रष्ट को॥
कुल में तिलाञ्जलि का प्रदाता दुष्ट को रहता नहीं।
दुष्कर्म रत रावण स्ववंश-ध्वंस-नद दहता नहीं॥

(१४४)

कुरुवर हुआ श्रीहत हतप्रभ सूर्य्य-सम ही शोक से।
है मुख मलीन विलीन बल रिपु कृत समर-आलोक से।
मणि-हीन अहि-सम विविध भांति विलाप वह करने लगा।
सुख-सिन्धु था जो अब उसी पर विपद फल भरने लगा॥

(१४५)

यह देख कौरव वाहिनी सेना लगी सब भागने।
ज्यों धैर्य्य उसका हर लिया हो शत्रु कृत रण याग ने॥
ज्यों आग लगने पर गृहों से हैं भागते सब ओर को।
करने लगे त्यों हीं पलायन छोड़कर रण घोर को॥

(१४६)

कृतवीर झट आकर वहाँ सन्धान शर करने लगा।
आते हुए रिपु सैन्य को वह वाण से भरने लगा।
निर्भय निरंकुश तीव्र गति से तीर वह तजने लगा।
पाण्डव दलों का नाश कर रण साज वह सजने लगा॥

(१४७)

वह एक ही निज युग करों से वाण बरसाता रहा।
लाखों करोड़ों शत्रुओं पर भास झहराता रहा॥
रिपु चाप से संत्यक्त सायक अतुल बहु सहता रहा।
पीछे न धरता पैर वह रण सिन्धु में बहता रहा॥

(१४८)

निज शक्ति द्वारा रोकली गति शत्रु दल की सर्वथा।
था कर दिया अवरुद्ध बन्दर सैन्य रावण ने यथा॥
यह देख कर अनलेख सेना लौट आई क्रोध में।
तत्पर हुई वे शीघ्र पाण्डव सैन्य के प्रति शोध में॥

(१४९)

करने लगी लौटी हुई सेना समर्पण प्राण को।
देने लगी बलि चण्डिका को काट रिपु बलवान को॥
दोनों दलों की शस्त्र धारा भूमि को भरने लगी।
चीटीं तरह सेना सहस्र सहस्र यों मरने लगी॥

(१५०)

कुरु दल करोड़ों शत्रुओं के शीश को कटने लगे।
रिपु रक्त से रण याग बहु विधि शीघ्रता पटने लगे॥
छुटने लगे केवल कलाई वीर की वर बाण से।
करने लगे सन्तोष वे मरते हुए इस प्राण से॥

(१५१)

इस भांति कृप के आक्रमण से समर गति होने लगी।
कुक्कुर शिवा सब ओर शवपर मग्न हो रोने लगी॥
भक्ष्यार्थ यों आने लगी सुरसुन्दरी सुरलोक से।
शोकित हुए सुरदेव भी भीषण समर-आलोकसे॥

(१५२)

कहने लगा तब सात्यकी कृत के निकट आ क्रोध से ।
देखूं तुम्हारी वीरता सम्मुख लड़ो दुर्योध से ॥
बलवान बलशाली विपक्षी-वृन्द से लड़ता सदा ।
जम्बुक दलों से केसरी संग्राम है करता कदा ॥

(१५३)

निर्बल जनों पर सर्वदा चलती सबों की नीति है ।
बलवान वह होता न करता कायरों की रीति है ॥
समजोर से लड़ता वही जो वीर निज को मानता ।
कब ? बाज निज सम्मुख समर पक्षी निकर से ठानता ॥

(१५४)

वह कह प्रलय कालीन वर्षा वाण की करने लगा ।
कर खण्ड कृत के चण्डशर रिपु-प्राण वह हरने लगा ॥
वह सनसनाहट सायकों की भीति फैलाने लगी ।
कुरु वाहिनी सेना सभय रण मृत्यु-मुँह जाने लगी ॥

(१५५)

दोनों वली के वाण अम्बर मार्ग को भरने लगे ।
होकर पतन रण भूमि में रिपु-चेतना हरने लगे ॥
ज्यों कर्ण अर्जुन-युद्ध से त्रैलोक्य में भय था हुआ ।
कायर लगे छिपने भयङ्कर रूप था रण का हुआ ॥

(१५६)

नाराच-निकरों के पतन से दृश्य यों होने लगा।
गम्भीर गर्जन कर गगन ज्यों वज्र हो खोने लगा॥
रोने लगीं रिपु-नारि इस आतङ्क से स्वनिकेत में।
जागृत भवानी भव हुए थे लीन जो अद्वैत में॥

(१५७)

दोनों धुरीण महारथी रण राम-सम रचने लगे।
कचने लगे रणवीर को कुहराम फिर मचने लगे॥
समदक्ष दोनों यक्ष के दल दृश्य दर्शन के लिए।
अनिमेष लोचन थे खड़े जयकार गर्जन के लिए॥

(१५८)

रे रे धनञ्जय-शिष्य शिक्षा प्राप्त कर इस बाण से।
है त्राण अब तेरा नहीं मुझसा प्रबल बलवान से॥
कहता हुआ यह वन्हि-सम नाराच उसने कर लिया।
झट सात्यकी के भाल को आहत उसी से कर दिया॥

(१५९)

सायक-भुजङ्गम-सम तुरत निज त्रोण से बाहर किया।
कर घोर रव उसने पुनः उसको धनुष पर धर दिया॥
अवलोक कर रिपु सात्यकी के युग करस्थित चापको।
कर छिन्न उससे शीघ्र जाना धन्य अपने आप को॥

(१६०)

पर साहसी वह सात्यकी कृत के समक्ष डटा रहा।
ले अन्य धन्वा हाथ उसपर घोर वाण-चढ़ा रहा॥
दश वाण से कृतवीर को व्रण युक्त उसने कर दिया।
शर अन्य लेकर सारथी का प्राण उससे हर लिया॥

(१६१)

यह देख कुरुवर सैन्य में भगदड़ पुनः होने लगी।
संग्राम-रत वर बन्धुओं को भी सभी खोने लगी॥
वह त्रस्त होकर प्राण-आशा से निराशा रत हुई।
सब भांति छिपने में उलूक स-भीत ज्यों परिणित हुई॥

(१६२)

कुरुनाथ तब कहने लगा कर्कश स्वरों में सैन्य से।
रे ? शत्रु-सम्मुख भागने में लाभ क्या ! है दैन्य से॥
करके पलायन भी बचेगा तू न मेरे बाण से।
संग्राम में सद्गति मिलेगी मर सबों को प्राण से॥

(१६३)

वह कह अकेला ही लगा वह वाण बरसाने वहाँ।
गिरने लगे आकाशसे सायक सहस्र यहाँ वहाँ॥
वह प्राण-अर्पण से भयानक युद्ध में प्रस्तुत हुआ।
गर्जन उसीका वायु-सम रण-भूमि में विश्रुत हुआ॥

(१६४)

करने लगा संहार लेकर वाण निष्ठुर नाग-सा।
भरने लगा रण काट शिर ले शर भयंकर आग-सा॥
होकर अकेला ही सबों को विद्ध उसने कर दिया।
तिल तिल समर मैदान को शर वृष्टियों से भर दिया॥

(१६५)

कहने लगे गोविन्द तब गांडीव धारी पार्थ से।
करने लगा तब नष्ट दल कुरुराज जो पुरुषार्थ से॥
देखो? उधर को दण्ड से जो वृष्टि करता वाण की।
है सैन्य चिन्ता में पड़ी व्याकुल प्रपीड़ित प्राण की॥

(१६६)

यह कह उसी की ओर रथ श्रीकृष्ण ले जाने लगे।
भीमादि द्रौपद भी वहो स-क्रोध सब आने लगे।
सुत द्रौपदी के शस्त्र सज्जित भीम रव करते हुए॥
सम्मुख हुए कुरुभूप के शर से मही भरते हुए।

(१६७)

सब शूरने सायक-समूहों से रणस्थल भर दिया।
संग्राम ने निज रूप निष्ठुर नाग-सम ही धर लिया॥
जिस भांति छोटे पेंड़ होते छिन्न अब विशेष से।
होने लगे शिर भिन्न नर ज्यों शर-पतन घनलेख से॥

(१६८)

यद्यपि पराक्रम शौर्य्य बल संपन्न पाण्डव वीर थे।
दोनों दलों में अग्रगण्य समीर-सम रण धीर थे॥
वे थे-तदपि कुरुराज के वर बाण से व्रण युक्त यों।
सुग्रीव रावण बन्धु-शर से थे वहां दुख युक्त ज्यों॥

(१६९)

गज अश्व मानव-वीर पाण्डव पक्ष के सब त्रस्त थे।
वे शत्रु-सायक-संघ से सूर्य्यास्त सम ही व्यस्त थे॥
रण-धूल-सम रिपु तीक्ष्ण तीरों से तिमिर आच्छन्न था।
पृथ्वी हुई सायकमयी संग्राम-विपदापन्न था॥

(१७०)

पाण्डव-समूहों से न कुरुवर एक यों शङ्कित हुआ।
ज्यों सिंह जम्बुक वृन्द से कुछ भी न हो कंपित हुआ॥
सब शूर को नाराच-निकरों से व्यथित करने लगा।
प्रायः न कोई बच सका रिपु तीर जब झरने लगा॥

(१७१)

वे सात्यकी सहदेव धृष्टद्युम्न आदि महारथी।
राजा युधिष्ठर भीम अर्जुन नृप विराटादिक रथी॥
द्रुपदातनय बलवान् सृञ्जय शोमकादिक भी सभी।
पीड़ित हुए कुरुभूप के बहु तीक्ष्ण सायक से जभी॥

(१७२)

सहदेव तब संरुष्ट हो उसके निकटवर्त्ती हुआ।
वह काल से बढ़कर वहाँ समराग्रणो सत्वर हुआ॥
कर लक्ष्य उसको बींधना प्रारंभ उसने कर दिया।
अनिरुद्धने ज्यों "वाण" पर था वाण का बरसन किया॥

(१७३)

यह देख कुरुवरने सँभलकर शीघ्र धन्वा तान के।
खण्डित किया रिपु युग कर-स्थित चाप शर सन्धान के॥
लेकर पुनः सायक उसीसे क्लेश अति देने लगा।
रथ-नष्ट करने के लिए खर भल्ल वह लेने लगा॥

(१७४)

तबतक उधर से पार्थ-कर से त्यक्त सायक चारने।
कर छिन्न उसका शत्रु-रथ-हयको लगा संहारने॥
पर सप्त विंशति वाण कुरुवरने तुरत कर में लिया।
अरि-चण्ड शर को खण्ड कर अरि गात में व्रण कर दिया॥

(१७५)

चट बढ़ कहा सहदेवने तब क्रोध में कुरुनाथ से।
कुल-नाश तूने कर दिया रे दुष्ट ! अपने हाथ से॥
तू क्षत्रियों के बंश को विध्वंस करने के लिए।
अवतंस है रे रे नृशंस ! अकीर्ति-अर्जन के लिए॥

(१७६)

होता न क्यों ? कर्त्तव्य पर तुझको तनिक संताप है।
रे खल ! तुझे खलता न क्यों ? तूने किया जो पाप है॥
शङ्कर-शरण के गहन से भी त्राण तब होगा नहीं।
रे रे छली ! उद्धार पापी का कभी होता कहीं॥

(१७७)

प्रियबन्धु मेरे भीम का तव प्राण ही आहार है।
क्यों ? यों वृथा पुरुषार्थ कर करता कपट विस्तार है॥
अपकर्मियों का विश्व में विस्तार है होता नहीं।
रघुवीर-शठ से विद्ध रावण अन्त में रोता कहीं॥

(१७८)

नर-कुल कलंकी नारकी के हेतु नरक द्वार है।
उद्धार उसका है नहीं जो पाप का अवतार है॥
दुर्वाक्य से दुत्कारता सहदेव शर लेता हुआ।
कर घात उसके गात में दुःसह व्यथा देता हुआ॥

(१७९)

यह देखकर कुरुदेवपर कर सूर्य्य सम ही दृष्टि की।
कहने लगा उससे वही रचता हुआ रण सृष्टि की॥
जो कार्य्य है वीरत्व का होता न वह आलाप से।
है सत्य, होता दग्ध निर्बल शत्रु उग्र प्रताप से॥

(१८०)

है शौर्य्य जिसमें वह न बकता व्यर्थ की बातें कभी।
जो है प्रतापी वह न सहता शत्रु की लातें कभी॥
कोदण्ड पर आसीन कर शर एक, यह कहता हुआ।
रथ, सूतयुत संहार कर वह शत्रु शर सहता हुआ॥

(१८१)

यह कर दशा सहदेव की वह घोर रव करने लगा।
कोदण्ड के भीषण रवों से भूमि को भरने लगा॥
रथ नष्ट होने से न भी माद्रेय कुछ चिन्तित हुआ।
झट अन्य रथ आसीन होकर वीर रणमण्डित हुआ॥

(१८२)

तब पार्थ भीमादिक सभी उसको लगे शर मारने।
व्रण-पूर्ण उसको कर दिया नाराच सर्पाकार ने॥
टलता नहीं अपनी प्रतिज्ञा से मनस्वी धीर ज्यों।
विचलित हुआ कुछ भी नहीं शरघातसे कुरुवीर त्यों॥

(१८३)

तत्काल आया पृष्ठ-पथ से शूर शकुनी सामने।
शर से समर को भर दिया उसका विकट संग्राम ने॥
उसने हुताशन सम लिया वरवाण अपने हाथ में।
क्लेशित हुए उससे युधिष्ठिर सूत रथ के साथ में॥

(१८४)

यह देखकर सहदेव रथ अति शीघ्र ले आता हुआ।
आरूढ़ कर उस पर उन्हें रण दूर ले जाता हुआ॥
इस भांति कुरुवर ने सबों से समर डट कर है किया।
जो थे अचल उनकी वहां गति रुद्ध झटपट कर दिया॥

(१८५)

तब प्रण पुरः सर समर लिप्सा-पूर्ण वे करने लगे।
समदक्ष हो भीमादि उसकी चेतना हरने लगे॥
प्रलयाग्नि वाणों से उसे शिक्षा जभी देने लगे।
कुरुवाहिनी सेना संभल कर वाण थे लेने लगे॥

* चतुर्थ खण्ड समाप्त *

* पंचम खण्ड *

❀ उपसंहार ❀

धन्वा लिये बढ़ते हुए कौरव-दलों को हेर के।
स-क्रोध अर्जुन ने जनार्दन से कहा मुंह फेर के॥
माधव ! नहीं इस धूर्त का कर्त्तव्य अब जाता सहा।
संभला नहीं अबतक वही जो कष्ट अति पाता रहा॥

(२)

अब भी नहीं क्यों ? पाप-फल-संभोग उसका पूर्ण है।
होता कपट का गर्व उसका क्यों ? न अब भी चूर्ण है॥
बस अश्व को अब हांकिये देखूं विपक्षी वीरता।
गांडीव से विध्वंस कर दूँगा उसीको धीरता॥

(३)

इस सैन्य-सागर में रमेश ! प्रवेश करने दीजिए।
सम्मुख विधर्मी के सुधन्वा सुदृढ़ धरने दीजिए॥
मैं आज बाणों से करूंगा अन्त इस संग्राम का !
रहने न दूँगा शान दुर्य्योधन छली बलधाम का॥

(४)

कृत पाप का फल पापियों को शीघ्र मिलना चाहिए।
हो बन्धु भी यदि शत्रु उसका मान हरना चाहिए॥
शठता न शठ की शीश पर सर्वत्र धरना चाहिए।
दुर्जन जनों के संग सज्जनता न करना चाहिए॥

(५)

सोचा! समर-आरम्भ को दिन आज अष्टादश हुए।
ये शत्रुओं के पास योद्धा जो सभी सुर-वश हुए॥
अब रह गई हैं शत्रु-सेना धेनु खुरकी-सी अभी।
दुष्कर्म-पथ-गामी कहो? आराम है पाता कभी॥

(६)

आशा हमें थी भीष्म का वह वाक्य टालेगा नहीं।
कुरुराज इस संग्राम में सहयोग आ देगा नहीं॥
अपराध सब स्वीकार कर वह सन्धि कर लेगा अभी।
छल वञ्चना दुर्बुद्धि अपनी दूर कर देगा सभी॥

(७)

आचार जो छोड़ा नहीं, है मूर्ख कितना वह कहो!।
मृत भीष्म को भी देखकर पलटी न मति उसकी अहो!॥
हित युक्त सच्ची भारती उसने बतायी थी उसे।
वह कब सुना करता कहो दुर्बुद्धि ने घेरा जिसे॥

(८)

आचार्य जो सद्पात्र सर्वश्रेष्ठ आदरणीय थे।
जिनके विचार सुचारु सबको सर्वथा श्रवणीय थे॥
वह शठ उन्हें अपमान कर कुल नाश में तत्पर हुआ।
परिणाम उसका देखलो, कैसा समर दुष्कर हुआ॥

(९)

जय वासना थी कर्ण के भुजदण्ड के वीरत्व में।
पाता न पारावार सम था पार रणधीरत्व में॥
वह भी हुआ निःप्राण उसके पक्ष से लड़कर वही।
करता सबों को नष्ट पापी अवतरित होकर कहीं॥

(१०)

मारे गये बल वीर धीर विकर्ण मेरे वाण से।
भूरिश्रवा यह शल्य राजा शाल्व अपने प्राण से॥
वाह्लीक राक्षसवर अलायुध शोमदत्त सुजान भी।
संहृत हुए भगदत्त दुःशासन सभी बलवान् भी॥

(११)

अक्षौहिणीपति भीम के भुज दण्ड से कितने कहो!।
सुरदेव सेवा रत हुए गत प्राण होकर वे अहो!॥
फिर भी हुआ इन मार काटों का न अबतक अन्त है।
है भ्रान्त कितनी बुद्धि वह कैसा महान असन्त है॥

(१२)

जिसको हिताहित का सदा सर्वत्र समुचित ज्ञान है।
है मूर्ख जो पशु सम नहीं जो सर्वथा विद्वान् है॥
निज से अधिक ही शत्रुओं का बल पराक्रम जान के।
साहस करेगा कौन रणका वीर रिपु को मान के॥

(१३)

गोविन्द! तुमने भी कहा था सन्धि करने के लिये।
क्या-क्या किया उद्योग इसकी कुमति हरने के लिये॥
फल बीज ऊसर भूमि पर जिस भांति बोना व्यर्थ है।
अति अज्ञ को हितकर वचन कहना महान् अनर्थ है॥

(१४)

जब आपकी हित बात पर वह ध्यान दे पाया नहीं॥
कल्याण अपना जानकर भी ज्ञान पथ लाया नहीं।
तब अब दवा है कौन सी जो राह पर लाये अभी॥
है मूर्ख जो ज्ञाता न होता वह चतुर्मुख से कभी।

(१५)

जिसने पिता की मूर्खतावश बात हितकर टाल दी।
माता-कथा कल्याणकारक जानकर भी त्याग दी॥
वह मूर्ख अब कैसे किसी की बात पर कुछ ध्यान दे।
साहस करेगा कौन जो अति अज्ञ को कुछ ज्ञान दे॥

(१६)

कुरुराज का है जन्म कुल का अन्त करने के लिये।
संसार भर के क्षत्रियों के प्राण हरने के लिये॥
यह राज जीते जी न देगा था विदुर जी ने कहा।
अवलोकते हैं वाक्य उनका सत्य होकर ही रहा॥

(१७)

जिस मूर्ख ने सुनकर हितैषी बात द्विजवर राम की।
अवहेलना करदी कथा सब जानकर परिणाम की॥
वह नीच निश्चय ही प्रविष्ट हुआ विनाश विचार में।
विध्वस्त होता मूर्ख लेकर नाव को मंझधार में॥

(१८)

भगवन्! अतः मैं कौरवों का नाश कर दूंगा अभी।
शर से बुझाऊँगा न जो समझा वचन से है कभी॥
कुरुदल दलों में आप मुझको शीघ्र ही पहुंचाइये।
अब देखिये मम हस्त कौशल आप रिपु दिखलाइये॥

(१९)

यह सुन कथा आगे बढ़े हय बागडोर लिये हरी।
मृग को लगे झट झोड़ने अतिरक्त दृष्टि किये हरी॥
निश्शंक हो जब शत्रुओं के व्यूह में घुसने लगे।
बसने लगे रिपु देवपुर जब सर्प शर डसने लगे॥

(२०)

उस काल नन्दीघोष रथ सर्वत्र ही देखा गया।
ज्यों वायुगति से धूल हो सब ओर ही पेखा गया॥
जलवाह जल धारा धरा पर स रव बरसाता यथा।
अर्जुन विपक्षीवृन्द पर है वाण झहराता तथा॥

(२१)

जब पार्थ कर से त्यक्त शर सबको लगे संहारने।
पड़ने लगी तब खलबली हय गज लगे चिग्घारने॥
कटने लगे नर मुण्ड सौ सौ खण्ड हो संग्राम में।
जाने लगे रणवीर रण करके विविध सुरधाम में॥

(२२)

शर सर्प अजगर शूर को मुख से निगल जाने लगे।
फुत्कार कर सारी दिशा में भीति फैलाने लगे॥
संसार सायकमय हुआ कौन्तेय के वीरत्व में।
कुछ भी न थी अब लेश रिपु रणधीर के धीरत्व में॥

(२३)

की वृष्टि विविध विधान से वर वाण की जब पार्थ ने।
खो दी बलीवर साहसी की धीरता पुरुषार्थ ने॥
तब भागने रण से लगे सब मोह माया छोड़ के।
रण कर सका कोई न अर्जुन से वहाँ जी तोड़ के॥

(२४)

गांडीव से संत्यक्त हो जाते जहाँ तक वाण थे।
तृण तुल्य उतनी दूर भस्मीभूत रिपु के प्राण थे॥
यद्यपि सुयोधन के सुयोद्धा धीर वीर अगण्य थे।
तत्पर पलायन में तदपि थे पार्थ तीर असह्य थे॥

(२५)

ज्यों सिंह भय से यूथ मृग के छोड़ते विपिनस्थली।
भगने लगी संग्राम से भयभीत त्यों सेनावली॥
यह देखकर गांडीवधारी ने कहा कुरुवीर से।
आती न तुझको लाज क्यों? होते विमुख मम तीर से॥

(२६)

रे पापियों के पक्षधारी धैर्य तूने खो दिया।
दुष्कर्म पथ पर पैर रे रे नर कलंकी है दिया॥
इस हेतु मेरे वाण तेरे प्राण अभिलाषी न हैं।
तू है विमुख शर क्यों? तजें हम वीर हैं पापी न हैं॥

(२७)

यह कह समुद जय शंख से जय घोषणा करने लगे।
वे भीम भीतिप्रद रवों से भूमि को भरने लगे॥
सञ्जय तथा शोमादि जय जयकार में जब रत हुए।
कर शंख धुनि गोविन्द तब आनन्द में परिणित हुए॥

शल्य वध समाप्त।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक—

रचित "भीमवध" इसी सम्मोहक शैली तथा
छन्दों में आप पाठकों की सेवा में
अति-शीघ्र अर्पित किया जायगा
समय की प्रतीक्षा करें।

—:*:—